ध्यानसे चिन्ता निवारण

ध्यान से चिन्ता निवारण

(चिन्ता निवारण की सरल, श्रेष्ठ और अनुभवात्मक)
ध्यान विधि की अमूल्य कृति)

*

लेखक :

डॉ० चमनलाल गौतम

रचयिता : ध्यान की सरल साधनायें, ध्यान के गहरे प्रयोग, कुण्डलिनी जागरण, नाद योग, त्राटक से मानसिक शान्ति; प्रेम की उच्च साधना, योग महा विज्ञान, भक्तियोग, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग आदि।

*

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेदनगर) बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० ४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमन लाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर),

बरेली–२४३००३ (उ० प्र०)

फोन : ४२४२

लेखक

डॉ० चमनलाल गौतम

संशोधित संस्करण :

सन् १९८४

★

★

मुद्रक :

शैलेन्द्र वी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस

भीकचन्द मार्ग, मथुरा।

मथुरा (उ० प्र०)

★

नौ रुपये मात्र

भूमिका

आज के इस वैज्ञानिक युग में धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य और भौतिक सुख सुविधाओं के सभी प्रकार के साधन दिन-दिन बढ़ते जा रहे हैं। परन्तु मानसिक दृष्टि से मानव अपेक्षाकृत अधिक दुःखी चिन्तित और नाना प्रकार की समस्याओं में उलझा हुआ सा प्रतीत होता है। आंतरिक दृष्टि से आज अस्सी प्रतिशत व्यक्ति गुप्त, दुःख, चिन्ता, शोक और भय से त्रस्त हैं। धनवान लोग समाज में अपनी उच्च प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए ब्लड प्रेशर से परेशान हैं। पूँजीपत लोग मोटर, बंगला, धन वैभव, उच्च सामाजिक स्थिति, प्रतिष्ठा और सब प्रकार की सांसारिक स्मृद्धि पाकर भी मानसिक दृष्टि से दुःखी, रोगी और निश्चित रहते हैं।

अश्लीलता और कामुकता में रुचि लेना, कामुक साहित्य का अध्ययन करना, गन्दे गीत गाना, अश्लील चलचित्र देखना, उत्तेजक उपन्यासों में उलझे रहना, चोरी की दुष्प्रवृत्ति, फिजूल खर्चों, व्यर्थ का टीपटाप और दिखावे की प्रवृत्ति, बढ़ती हुई अर्द्धनग्नता इस तथाकथित वैज्ञानिक युग की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मानसिक विकृतियों की सूचक हैं। नागर के एक समाचार के अनुसार एक वर्ष में २१६४ व्यक्तियों ने आत्म-हत्यायें की हैं। इनमें ११८२ पुरुष व ९८२ महिलायें थी। यह सब शरीर से स्वस्थ होते हुए भी मानसिक विकृति के कारण मर गये। इन सबकी मृत्यु के पीछे कोई न कोई मानसिक कमजोरी निहित थी, जैसे—दरिद्रता, बेकारी, शारीरिक रोग से उत्पन्न भय, पारिवारिक कलह, बेईमानी, मुकद्दमे बाजी, सामाजिक कलंक का गुप्त डर, अनैतिक प्रेम काण्ड अथवा उत्तेजनायें। यह सभी मानसिक कमजोरियाँ भयंकर अनर्थ करने वाली हैं।

आज का प्रगतिशील मानव गुप्त मन में छिपी अपराध, वृत्ति के कारण विभिन्न प्रकार की धूर्तता, ठगी, छल, कपट, जालसाजी, ढोंग के प्रपंच करता है। नकली अमीरी, नकली सुन्दरता, नकली प्रेम और नकली अभिनय करके वह दूसरों पर अपनी गलत छाप छोड़ना चाहता है। आज समाज में व्याप्त यह ढंग वृत्ति चिन्तनीय स्थिति तक पहुँचती जा रही है।

रक्तचाप, हिस्टीरिया, मूर्छा, पागलपन, चिन्ता, घबराहट, वहम्, अन्धविश्वास, रुढ़ीवादिता, दिल की धड़कन,आत्महत्या के घातक विचार, अपने को दीन-हीन समझना, अति कामुकता, अत्यधिक लज्जा का भाव, अपने आपको अपराधी मानना, दूसरों से सदा मतभेद रहना, परिस्थितियों के अनुकूल अपने को न ढाल पाना, भय के विचार, मानसिक परावलम्बन, अति भावुकता, कठिनाइयों की कल्पनायें, डरावने स्वप्न दुविधा प्रवृत्ति, प्रबल आवेशों की उत्तेजना, भुलक्कड़पन आदि सैकड़ों मानसिक उलझनें हमारी मानसिक कमजोरियों के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। आज समाज में फैली अनैतिकता, अत्याचार, मिलावट, कमजोरी भ्रष्टाचार, वेईमानी आदि के दुष्ट मनोविकार मानसिक अशांति उत्पन्न कर रहे हैं। इन सामाजिक दोषों से मन में अनेक भावना ग्रन्थियाँ उत्पन्न होकर जीवन को अशांत बना रही हैं। आडम्बर, अविवेक और असंयम की पराकाष्ठा हो गयी है। ये सभी मानसिक परेशानियाँ बढ़ाने वाले कारण हैं। मृत्यु, रोग, शोक, हानि प्रिय का वियोग हमारे मन में असन्तुलन उत्पन्न करता है। बुद्धि स्थिर नहीं रह पाती। यह मानसिक असन्तुलन ही चिन्ता और भय बनाये रखता है।

काम क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, मोह आदि मानसिक विक्रतियाँ उत्पन्न करते हैं। क्रोध तब आता है जब व्यक्ति का विवेक नष्ट हो जाता है और उसका मस्तिष्क अहंकार से ओत-प्रोत होता है। अहंकार भी एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसकी प्रखर भूमि पर क्रोध की उत्पत्ति होती हैं। क्रोध का प्राकट्य मानसिक निर्बलता का चिन्ह है।

यह शारीरिक मानसिक और आत्मिक हर दृष्टि से हानिकारक है। शास्त्रों और सन्तों ने इससे दूर रहने की प्रेरणा दी है। गीता में कहा है कि काम की तृप्ति होने में विघ्न होने से उस काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है, अविवेक से स्मृति भ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से सर्वस्व नाश हो जाता है।

महोपनिषद् में कहा है कि अहंकार के कारण विपत्ति आती है, अहंकार के कारण दुष्ट मनोव्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। अहंकार के कारण कामनायें उत्पन्न होती हैं। अहंकार से बढ़कर मनुष्य का दूसरा शत्रु नहीं है। लोभ से मिलावट, बेईमानी, भ्रष्टाचार, चोरी, डकैती आदि-सामाजिक रोग उत्पन्न होते हैं जो मानसिक परेशानियाँ उत्पन्न करते हैं। ईर्ष्या और द्वेष तो तन और मन दोनों को जलाते ही रहते हैं।

अर्थववेद २०।९६।२४ में कहा है कि मन में जमी हुई वासना, मोह, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोविकार ही मानसिक चिन्ताओं की जड हैं। अतः मन के भार को हल्का करने के लिए पूर्णरूप से स्वस्थ रहने के लिए मानसिक पापों का परित्याग करना चाहिए। मनुष्य की अनियन्त्रित इच्छायें, अदम्य कामनायें, अपूर्ण अभिलाषाएँ और लालसाएँ गुप्त मन में दबकर तरह-तरह के विकार उत्पन्न करती रहती हैं। अर्थववेद ३।७।७ में भी कहा है कि बाहरी शत्रु इतनी हानि नहीं कर सकते जितनी अन्तः शत्रु करते हैं। अतः मानसिक स्वास्थ्य की इच्छा के लिए अन्दर के सब दुभावों को निकाल बाहर करना चाहिए। यही स्वस्थ शान्त और प्रसन्न रहने का रहस्य है।

मानसिक वृत्तियों का संशोधन तभी हो सकता है जब मन स्वस्थ हो, उसकी शक्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि विकास होता रहे, मन पर विजय प्राप्त हो, उसे अपनी इच्छानुसार प्रेरित किया जा सके, मन सात्विक और स्थिर रहे। इसके लिये मन से भी किसी शक्तिशाली

की अपेक्षा रहेगी। ऋषियों की अनुभूतियाँ बताती हैं कि प्राण मन से शक्तिशाली है। शास्त्र का प्रमाण है कि प्राण मन को अपने अधीन रखता है। समस्त प्राणियों का चित्त प्राण के साथ उसी तरह बँधा रहता है जैसे रज्जु से पक्षी बँधा रहता है। विचार द्वारा मन को वश किया जाय तो मन इसके लिए बाध्य नहीं हैं। अतः मनोजप का एक उपाय प्राण का श्वास प्रश्वास का ध्यान ही है।

मन को पवित्र, सात्विक, एकाग्र और स्थिर करने के लिए श्वास-प्रश्वास का ध्यान, एक सरलतम साधना है जिसे थोड़े अभ्यास से विकसित किया जा सकता है और अभीष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। मन में दुर्भाव तभी उत्पन्न होते हैं, जब मन अपवित्र और तामसिक वृत्ति का रहता है। पाप वृत्तियाँ तभी पनप सकती हैं जब मन निर्बल होता हैं। निराशा के भावों के उद्दीप्त होना भी दुर्बल मन का सूचक है। मानसिक चिन्ताएँ भी व्यक्ति को तभी घेरती है जब मन अनिश्चित अशांत और अशक्त स्थिति में रहता है। मानसिक शक्तियों की अभिवृद्धि, मन की एकाग्रता व स्थिरता से प्राप्त होती है। श्वास-प्रश्वास ध्यान से एकाग्रता सहज में ही प्राप्त की जा सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक में निर्देशित विधि के अनुसार अभ्यास करने पर श्वास की गति धीरे-धीरे धीमी होती जाती है, ऐसा प्रतीत होता है कि मन का ठहराव हो गया है मन का लय हो गया है, मन रहा ही नहीं। यह स्थिति आने पर मन गहले में प्रवेश करता हैं, मन की स्थिरता प्राप्त होती हैं, साधक मन पर विजय प्राप्त करता है, मन की निर्बलता दूर होती है और मन एक शक्तिशाली मित्र की तरह हर क्षेत्र में सहयोग देता है। साधक को ऐसा अनुभव होता है जैसे शांति की लहरें मन रूपी समुद्र में उठकर इधर से उधर आ जा रही है और वह शांति के समुद्र में गोते लगा रहा है। वह घण्टों इस स्थिति में बैठा रहता है। वह उसकी सफलता का सूचक है।

ध्यान काल में ही शान्ति की प्रतीति होती रहे, ऐसी बात नहीं है, इसका प्रभाव साधक के दैनिक जीवन पर भी पड़ता है। विरोधी परिस्थितियाँ तो हर व्यक्ति के जीवन में आती है और संघर्ष के क्षणों में ही उसकी परीक्षा होती है। जिस व्यक्ति ने ध्यान द्वारा मन पर विजय प्राप्त कर ली है, वह मन को एक कर्मचारी की तरह आज्ञा देता है और इच्छानुसार उसका संचालन करता है। वह कठिन स्थिति में पर्वत की तरह अडिग और स्थिर रहता है। सांसारिक परिस्थितियाँ उसे अशाँत और चिन्तित नहीं कर सकती। वह निश्चित, शाँत, प्रसन्न व सन्तुष्ट रहता है। तनाव व चिन्ताओं से वह मुक्त रहता है। कभी-कभी क्षणिक चिन्ताएँ आती भी है तो उनका सहज समाधान हो जाता है। यह निश्चित है कि ध्यान द्वारा ऐसी उच्च मानसिक स्थिति उत्पन्न की जा सकती है, जिससे व्यक्ति चिन्ता मुक्त जीवन व्यतीत कर सकता है।

–चमनलाल गौतम

विषय-सूची

—x—

ध्यान से चिन्ता निवारण

प्राण क्या है ?

'प्राण' शब्द के अनेक अर्थ समझे जाते हैं। कोई इसे वायु कहते हैं तो कोई श्वास, कुछ पाश्चात्य विशेषज्ञ आक्सीजन को ही प्राण मानते है। किन्तु प्राण है क्या ? इसे समझने में कुछ कठिनाई इसलिए प्रतीत हो रही है कि उसके सककक्ष कोई शब्द किसी भी भाषा में भी, जिसका यह शब्द है, इसका पर्याय दिखाई नहीं देता है।

पाश्चात्य भाषा में एक शब्द है ब्रीथ (Breath) जिसका अर्थ है श्वास, और पाश्चात्य विद्वान् उसी की प्राण से तुलना करते हैं। उनके विचार में ब्रीथ ही प्राण है। किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं। प्राण और श्वास एक ही तत्व नहीं है। उनमें भिन्नता है।

स्वामी विवेकानन्द ने प्राण शब्द का अंग्रेजी भाषान्तरण साइचिक फोर्स (Psychicforce) क्रिया है। यद्यपि यह शब्द प्राण के बहुत कुछ समीप तो है किन्तु 'प्राण' शब्द का सही अनुवाद नहीं है। क्योंकि इस शब्द का तात्पर्य मानसिक शक्ति से है और वस्तुतः मानसिक शक्ति से भी भिन्न है। वरन् मानसिक शक्ति तो प्राण के अधीन ही है।

प्राण के सम्बन्ध में ठीक से समझने के लिए यहाँ 'वृहदारण्यक उपनिषद्' का निम्न उद्धरण अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है—

आपो वा अर्कस्तद्यपाँ शर आसीत्सहन्यत सा पृथिव्य भवत्तस्यामश्राम्यत्तस्य श्रान्तय तप्तस्य तेजोरसो निरवर्तनाग्निः। स त्रेधात्मानं व्यकुरुतादित्यं तृतीयं वायु तृतीय स एष प्राणस्त्रेधा विहितः।

अर्थात्—जल या सूर्य-रश्मियों को जो जल के बाण थे, उनका सन्धान किया गया, जिनसे पृथिवी बनी। उसमें श्रम हुआ और उस के तपने से तेज का रस रूप अग्नि बन गया। उसने स्वयं को तीन रूप में विकृत किया। वह आदित्य, वह वायु वह प्राण ही त्रेधा कहा है।

प्राण तत्व क्या है? इस विषय में प्राचीन ऋषियों ने कम खोज नही की है। किसी ने आदित्य को प्राण कहा है तो किसी ने ब्रह्म को ही प्राण बताया है। उपनिषद् का ही मत है—

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते।

अर्थात्—यह वैश्वानर (सूर्य, अग्नि) ही विश्वरूप हैं तथा यही प्राणाग्नि के रूप में उदित होता है।

शतपथ ब्राह्मण में भी सूर्य को ही प्राण कहा गया है—'प्राणो वै अर्कः' अर्थात् 'प्राण ही सूर्य हैं।' अथवा—

सहस्र रश्मि शतधा वर्तमानः।
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

अर्थात्—सहस्र रश्मि वाला तथा सैकड़ों प्रकार के जीवों को उत्पन्न करने वाला सूर्य ही प्राण है।

अथर्ववेद के अनुसार प्राण ही मूल चेतना है, यथा—

प्राणो विराट् प्राणों देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणोह सूर्य चन्द्रमा प्राणमाहु प्रजापतिम् ।।

अर्थात्—प्राण ही विराट् है, वही सबका प्रेरक है, इसलिए सभी उसकी उपासना करते हैं । प्राण ही सूर्य है, चन्द्रमा है, प्रजापति है, वही सब भौतिक शक्तियों का सचालक हैं ।

उपनिषदों ने प्राणतत्व को ब्रह्म से उत्पन्न हुआ बताया है यथा—

यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुल्लिगा व्युच्चरन्त्येवमेवा स्मादात्मनः सर्वो प्राणाः ।

अर्थात्—जैसे अग्नि से छोटी-छोटी चिनगारियाँ निकलती है, वैसे ही आत्मा से सब प्राण निकलते हैं ।

और संसार की उत्पत्ति उस प्राण से ही हुई है, कठोपनिषत् में कहा है–'यदिदं किंच जगत्सर्व प्राण एजति निःसृतम्' अर्थात् 'यह जो कुछ भी संसार रूप से उत्पन्न हुआ है वह सब प्राण से ही नि-सृत है ।

प्राणाग्निहोत्र-उपनिषद् में प्राण की व्यापकता और उसके विश्वरूप होने का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

विश्वोऽसि वैश्वानरो विश्वंरूप
त्वया धार्यते जायमानम् ।
विश्वं त्वाहुतयः सर्वा
यंत्र ब्रह्माऽमृतोऽसि ।।

अर्थात्—हे प्राण ! तू ही विश्व है । क्योंकि ऊपर, नीचे दांये, बाँये, भीतर, बाहर सब ओर, सब प्रकार से तू ही उसे समाविष्ट किये हुए हैं । तू वैश्वानर है, क्योंकि प्रत्येक प्राणी के शरीर में ओत-प्रोत है । विश्वरूप है, और तू ही इस प्रकट हुए विश्व को धारण किये हुए हैं । सब की आहुतियाँ (उपासनाएं) तेरे ही प्रति हैं । तू ही ब्रह्मामृत रूप (महान) है ।

प्राण ही शक्ति है, उसी के बल से यह देहधारी बलवान बने हुए है। वही जीवन है, यथा—

तेजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि।
देवानां धामनामसि विश्वमसि विश्वमायुः॥

अर्थात्—हे प्राण! तू ही तेज है, उत्साह, बल और दीप्ति भी तू ही है। तू देवताओं का धाम (आश्रय स्थान) अथवा दिव्य गुणों का स्थान है। तू विश्वरूप है और विश्व की आयु भी तू ही है।

प्राण को ही परमात्मा भी कहा है। श्रुति है—

प्राणोऽग्निः परमात्मा पञ्चवायु भिरावृत्तः।
अभयं सर्व भूतेभ्यो न मे भीतिः कदाचन॥

अर्थात्—प्राण ही अग्नि है। वही पंचवायुयों से आवृत्त परमात्मा है। हे प्राण! तू मुझे सभी प्राणियों से अभय कर। मुझे कभी भी किसी से भय न हो।

प्राण रूप उपास्य के उपासक उसकी उपासना करते हुए यह निवेदन करते हैं—

येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनाते सदा।
तेन सहस्र धारेण पावमान्यः पुनन्तु माम्॥

अर्थात्—प्राण शक्ति की जिस पवित्रता से देवगण भी सदा अपनी आत्मा को शुद्ध बनाते हैं, वही पावमान (पवित्रतम) प्राण मुझे अपनी हजार धाराओं से शुद्ध करें।

अथर्ववेद में भी प्राण सूक्त है, जिसमें उसके परमेश्वर होने का प्रतिपादन स्पष्ट रूप से हुआ है—

ॐ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदंवशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात्—उस प्राण को नमस्कार है, जिसके वश में यह सम्पूर्ण विश्व है तथा जो सभी प्राणियों का ईश्वर है और जिसमें यह सभी कुछ प्रतिष्ठित है।

जब तब शरीर में प्राण रहता है तभी तक जीवन है। प्राण के निकलते ही देहधारी की मृत संज्ञा होती है, यथा-'यस्मात्कस्माच्चाङ्गात्प्राण उत्क्रामति तदेव तच्छुष्यति' अर्थात्-'जब जिस किसी अंगों से प्राण निकल जाता है, तब वही अंग सूख जाता है। ऐसे व्यक्ति प्रत्यक्ष देखे जाते हैं, जिनके किसी अंग में पक्षाघात हो जाता है तो उस अंग की क्रिया चली जाती है, उसमें गति का अभाव हो जाता है वह गति प्राण की सबलता से ही सम्भव है।

प्राण ही वरिष्ठ है, वही सब का नियन्ता और सब का संचालक है। उपनिषद् का वचन है—

तान्वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहमापद्यथा अहमेवैतत्पंचधात्मानं प्रविभज्यैतद्वाणमवष्टभ्य विधारयामि।

अर्थात्—उस वरिष्ठ प्राण ने उन इन्द्रियों और मन से कहा कि तुम मोह में न पड़ो, मैं ही अपने पाँच रूप बनाकर इस देह को धारण किये हुए हूँ।

प्राण के दो भेद हैं—बाह्य और आन्तरिक। प्रश्नोपनिषद् का मत है—

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापान मवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः तेजो ह वाव उदानः।

अर्थात्-—आदित्य ही प्राण है, वही उदय होकर चाक्षुष प्राण को क्रियाशील बनाता है। पृथिवी में विद्यमान दिव्य आकर्षण शक्ति शरीर

के भीतर अपान को धारण करती है। आकाश की शक्ति समान, वायु की शक्ति व्यान और अग्नि की शक्ति उदान है।

शंकराचार्यजी ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कहा है—आधिदैविकेन समष्टि व्यष्टि रूपेण हैरण्यगर्भेण प्राणात्मनैवैतद् विभुत्वमाम्नायते नाध्यात्मिकेन' अर्थात् 'उपनिषदों ने समष्टि रूप आधिदैविक हिरण्यगर्भ रूप वाले को ही विभु (व्यापक) माना है, उसके आध्यात्मिक रूप को नहीं माना है। वह अणु होने के कारण मरणकाल में जीव के साथ ही उत्क्रमण करता है।

प्राण की श्रेष्ठता

उपनिषदों ने प्राण को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। एक बार इन्द्रियों और प्राण के मध्य इस विषय पर विवाद हुआ कि सबसे बड़ा कौन है ? उस समय उनमें से सभी ने अपने को बड़ा बताया। तब अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए एक-एक कर सभी इन्द्रियाँ शरीर से निकलने लगीं। चक्षु के निकलने पर शरीर की दर्शन शक्ति समाप्त हो गई और देहधारी अन्धा हो गया। श्रोत के निकलने पर बहरा और वाक् के निकलने पर गूंगा हो गया। घ्राणेन्द्रिय के निकलने पर उसकी सूंघने की शक्ति चली गई और त्वगेन्द्रिय के निकलने पर स्पर्श अनुभव करने वाली शक्ति का अभाव हो गया। अभिप्राय यह कि देहधारी अन्धा, गूंगा, बहिरा, पागल आदि हो गया तो भी उसका जीवन समाप्त नहीं हुआ। परन्तु प्राण निकलने लगा तब शरीर निष्क्रिय होने लगा, उसमें गति का अभाव होकर स्पन्दहीनता आने लगी जब सबने देखा कि प्राण के जाते ही जीवन चला जायगा, तब सभी प्रार्थना करने लगे प्राण की— 'प्राण तुम मत निकलो, तुम हमारे स्वामी हो, हम सब तुम्हारे आश्रित हैं। तुम ही हमारे ज्येष्ठ (बड़े), श्रेष्ठ तथा वरिष्ठ हो।

इससे स्पष्ट है कि प्राण ही देहाधारियों के लिए जीवन है, इसी

लिए उसे आयु कहा गया है । कुछ विदानों ने मन और इन्द्रियों की वृत्तियों को प्राण कह दिया है, किन्तु प्राण इन सब से भिन्न तत्व है। यही अन्तःकरण, मन, वाणी यथा अन्यान्य इन्द्रियों का संचालक है । यह सभी उसके अधीन रह कर ही अपना-अपना व्यापार करती है। इस प्रकार प्राण एक स्वतन्त्र तत्व है, उस पर किसी का नियन्त्रण नहीं हैं। यह सृष्टि का प्राकट्य स्थान होने से भी ज्येष्ठ और श्रेष्ट कहा गया है, यथा --प्राणो वाश्व ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ।'

समष्टि प्राण का स्थान सूर्य है-प्राण: प्रजानामुदष्ठत्येष सूर्य:' [प्राणियों को उत्पन्न करने वाला प्राण सूर्य ही है] सूर्य में ऊष्मा और प्रकाश का अनुभव तो सभी करते हैं, किन्तु उसमें एक अन्य सूक्ष्म सत्ता भी विद्यमान है, वह किसी को दिखाई नहीं देती। किन्तु उसी सूक्ष्म सत्ता की निर्झरी व्यक्त सूर्य के माध्यम से बरसती रहती हैं। यही महा-प्राण है। शरीरों में जो शक्ति, स्वास्थ्य, बल, वीर्य, तेज, उत्साह, स्मृति, स्फूर्ति आदि देखते हैं, यह सब उसी महाप्राण के अंशभूत हैं। इस तथ्य को आप निरी कल्पना ही न समझें, इसका अनुभव और दर्शन साधारण जन नहीं कर पाते ।

किन्तु वैदिककाल के ऋषियों से यह तथ्य छिपा न रह सका। उन्होंने इसे देखा भी, और दर्शन भी किया। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है-

अपश्यं गोपाद्यमनिपधमानभा च परा च पथिमिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचाः स विषूचीर्वसा न आनरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥

अर्थात्—मैंने प्राण को स्वयं प्रत्यक्ष देखा है । यह प्राण सभी इन्द्रियों का पोषण करने वाला है। यह कभी नष्ट नहीं होता, क्योंकि अविनाशी है। यह विभिन्न मार्गों (नाड़ियों) द्वारा शरीर में दौड़ता रहता है। मुख और नासिका के व्दारा यह शरीर में प्रविष्ट होता और बाहर निकल जाता है ।

यद्यपि प्राणतत्व समस्त प्राणियों में विद्यमान रहता है, किन्तु मनुष्य शरीर में इस तत्व की पर्याप्त मात्रा रहती है। इसलिए समस्त देहधारियों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य में विवेक की विद्यमानता है, जिस का अन्य प्राणियों में प्राय: अभाव रहता है।

बहुत से व्यक्ति इसे हेमोग्लोबिन कहते हैं—कोई प्लाज्मा कहते हैं, किन्तु यह उनसे बहुत ऊँची वस्तु है। न होमोग्लोबिन है न प्लाजा, न ऑक्सीजन, न ब्रीथ। यह एक प्रकार की महान् चेतना अथवा ऊर्जा है, जिसकी अनुभूति जीवन भर रहती है।

प्राण शक्ति को कुछ लोग विटल फोर्स भी कहते हैं। कोई कह कुछ भी ले, उसका रूप वही है, जो वेदों ने मान्य किया है। वह शब्दात्मक या चित्रात्मक नहीं, वरन् प्रकाशात्मक है। उसका अनुभव प्राणी सदैव कर सकता है। किन्तु, उसे जानने में कोई मशीनी यन्त्र भी सहायक नहीं हो सकता।

—*—

प्राण द्वारा भाव और विचारों के प्रकम्पनों का वहन

विद्वानों ने प्राण की गति दो प्रकार बताई है—अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। उसका अन्तर्मुखी प्रवाह पहिले सुषुम्ना में जाता और वहीं से विभिन्न नाड़ी केन्द्रों में सञ्चित होता रहता है। तथा वहीं से यथा आवश्यकता क्रिया वह नाड़ियों को प्राप्त होता रहता है। जैसे अन्न का

सार भाग देह में रक्षित रहता और निस्सार भाग मूत्र-पूरीषादि के रूप में शरीर से बाहर निकलता है, वैसे ही श्वासादि के द्वारा गृहीत प्राण का सार भाग प्राणमय शरीर में सञ्चित होता रहता है तथा शेष भाग निश्वासदि के द्वारा बाहर निकल जाता है। प्राणमय शरीर द्वारा बाह्य प्राण का आकर्षण और फिर उसका बाहर निकलना ही प्राण की द्विविध गति कही जाती है। किन्तु समस्त क्रियाएं प्राणमय शरीर से निकलने वाली प्राण धारा से ही सञ्चालित होती है ।

वस्तुतः प्राण सभी प्राणियो के लिए जीवन-पोषक तत्व हैं । सभी देहधारियों की विभिन्न क्रियाओं में मुख्य कारण यही है । मनुष्यों को इसका अधिक अंश वरदान रूप में प्राप्त हुआ है। उनकी गति, मति शक्ति का वाहक प्राण ही है । यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व होने के कारण सर्वत्र गमन योग्य है। अग्नि, वायु, जल, आकाश, पृथिवी सभी में इसकी विद्यमानता है। चराचर कोई भी जीव ऐसा नहीं जो प्राण के बिना रह सकता हो ।

प्राण के द्वारा ही भाव और विचारों के परमाणुओं और प्रकम्पनों का वहन होता है। नक्षत्रों और पृथिवी में जो आकर्षण शक्ति है; वह भी प्राण के ही कारण है। ग्रह-उपग्रह तथा विद्युत् आदि में जो विशेषता है वह प्राण की ही है ।

मरण काल मे जब प्राण निकलता है, तब जीवात्मा इसी पर आरूढ़ होकर कर्मानुसार लोक में गमन करता है। वहाँ भी जब शुभ कर्म सबल रहते हैं, प्राण भी सबल रहता हुआ आनन्द प्राप्त कराता है और जब शुभ कर्मो का फल भोग समाप्त हो जाता है तब यह प्राण ही प्राणी का अधोगति की प्राप्ति कराता है ।

मनुष्य में उत्साह, स्फूर्ति, सुमति, सद्भाव, सूझ-बूझ, कार्यक्षमता, विवेक, सुख, शान्ति, उल्लास, तृप्ति आदि का होना इस तथ्य को प्रकट

करता है कि उसके मस्तिष्क और नाड़ी केन्द्रों में प्राण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । इसके विपरीत जिस मनुष्य में दुर्भावना, दुर्बुद्धि, अशान्ति, आलस्य, रोग, दौर्बल्य, भय, साहस हीनता, प्रमादादि हों तो समझना चाहिए कि उसमें प्राण शक्ति सबल नहीं है ।

संसार की आधारभूता तीन क्रियाएँ प्रसिद्ध हैं—(१) इच्छाशक्ति, (२) ज्ञानशक्ति और (३) क्रियाशक्ति । यह तीनों प्राण पर ही आधारित हैं । शरीर का निर्माण कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों से होता है, इन तीनों में ही प्राण की विशेषता है ।

सोचना, बोलना, इच्छा, द्वेष, मन आदि चेतन क्रियाएँ प्राण के द्वारा ही होती हैं । वायु मण्डल में प्राण स्वच्छन्द रूप से रहता है, उस के अंश के अंश को प्राणायाम द्वारा योगीजन भीतर खींचते हैं । प्राणी दिन-रात हर श्वास लेते छोड़ते रहते हैं । उस समय बाह्य प्राण के साथ ऑक्सीजन की प्राप्ति होती है, वह भी शरीर को सबल बनाती है । प्राण ही शरीर में बनाने वाली दूषित गैस (कार्बन डाई ऑक्साइड) को बाहर निकालता है ।

वायु मण्डल की वायु में प्राण की जो विद्यमानता रहती है, वह पृथिवी में होने वाले प्रदूषण से बचाने में सहायक होती है । प्राण ही वह सार तत्व है जो प्राणी को क्रियाशील बनाए रखता है । इसीलिए विद्वानों ने 'यः प्राणयति जीवयतीति स प्राण कहकर स्पष्ट कर दिया है कि जो जीवन को प्राणमय (स्थिर) रखे वह प्राण ही है । अथवा 'यद्वै प्राणिति स प्राणः 'जो पोषण करे वह प्राण है ।

जैसे विद्युत् को बैटरी में सञ्चित करते है अथवा स्टोरेज में विद्युत का भण्डार रखा जा सकता है और उसे चाहे जब, इच्छानुसार प्रयोग में लाया जा सकता है, वैसे ही प्राण को भी मस्तिष्क में और

नाड़ी केन्द्रों में सञ्चित किया जा सकता। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब प्राण को प्रखर बनाने के लिए उसकी साधना की जाय । हमारे योगाचार्य न जानें कब से इस विषय में स्वयं अनुभव एवं अन्वेषण करते रहे हैं। वर्तमान में भी प्राण को प्रखर बनाने की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं। इसके महत्व को पाश्चात्य विद्वान् भी समझने लगे हैं और इस ओर आकर्षित हो रहे हैं।

केन्द्रित प्राण द्वारा महती ऊर्जा

इस प्रकार प्राण को प्रखर बनाकर उसे मस्तिष्क और नाड़ी केन्द्रों में सञ्चित कर लें तो उसके द्वारा हम बहुत से ऐसे कार्य सम्पन्न कर सकते हैं, जिनके विषय में कभी सोचा ही न गया हो। जिसे आशातीत सफलता कहते हैं वह इसी प्रकार से सञ्चित या केन्द्रित हुए प्राणकी ऊर्जा का चमत्कार होता है।

शायद आपने देखा हो कि आतशी शीशे के द्वारा सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करके आग लगाई जा सकती है। हम एक आतशी शीशा लेकर प्रकाश किरणों को उसके किसी केन्द्र बिन्दु पर एकत्र करें और उसके नीचे कोई वस्तु रख दें तो उसमें आग उत्पन्न हो जायगी। यदि उस केन्द्र बिन्दु के नीचे अपने शरीर का कोई भाग ले जाएँ तो वह जल सकता है। परन्तु ऐसा कैसे हो सकता है ? इस पर विचार करें तो समझ में आ जायगा कि किरणों में जो गर्मी है, वह उनके बिखरी रहने के कारण

इतनी तीव्र नहीं हो पाती कि शरीर को जला दे। फिर भी हम देखते है कि धूप तीव्र हो तो उसमें बैठना कठिन हो जाता है।

वस्तुः उन किरणों में जो गर्मी हैं, वही इसका कारण है। आतशी शीशे पर वे किरणें सम्मिलित रूप से पड़ती हैं और ऊर्जा उसके केन्द्र विन्दु को प्रभावित कर देती है। फल स्वरूप उनकी दाहक शक्ति प्रकट हो जाती है। आतशी शीशा जितना अधिक बड़ा होगा, उसके द्वारा उतनी ही अधिक दाहक शक्ति प्रकट होगी।

आधुनिक काल में एक्सरे के विषय में सभी जानते हैं। उनके द्वारा शरीर के भीतर की खराबी को सहज ही जाना जा सकता है। कुछ प्रकार की किरणों के द्वारा जटिल रोगों और अलसरों के इलाज भी किए जाते हैं। अमेरिका के डॉ० चार्ल्स टाउन ने किरणों की अपार शक्ति का पता लगाया है। उनके अनुसार अलमूनियम में विद्यमान आँक्साइड में क्रोमियम की कुछ मात्रा रहती है, वे किरणें जब लेजर किरणों के रूप में बदली गई तो उनमें निहित असीमित शक्ति प्रकट हो गई। उन लेजर किरणों की गणना आठवें आश्चर्य में है और इसी खोज के कारण चार्ल्स टाउन को नोबुल पुरस्कार भी प्राप्त हो गया।

उन लेजर किरणों के प्रयोगार्थ अमेरिका में एक ऐसे यन्त्र का निर्माण किया, जिसके द्वारा एक ही लेजर किरण से पचास करोड़ वाट क्षमतावाली विद्युत् शक्ति उत्पन्न हो सकती है। इन किरणों को केन्द्रित और नियन्त्रित करने के लिए उस यन्त्र में एक सेण्टीमीटर के हजारवें भाग के बराबर छोठे आकार का एक शीशा लगा है। यदि किरणों को उससे भी अधिक छोटा कर दिया जाय तो उनकी शक्ति और भी अधिक भयङ्कर सिद्ध हो सकती है।

यदि कार्बन को पिघला कर उसे वाष्प रूप में परिवर्तित करना चाहें तो उस क्रिया में घण्टों लगेंगे, जब कि लेजर किरणों के

द्वारा पलक झपकते जितने समय में ही वह क्रिया पूरी हो जाती है। इस उदाहरण से लेजर किरणों की शक्ति का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है।

सूर्य की किरणों में बड़ी शक्ति होती है। आज उनका प्रयोग विभिन्न कार्यो में किया जाने लगा है। भोजन पकाने के चूल्हे से लेकर धातुओं को गलाने का कार्य भी इनसे लिया जा सकता है। रोगों के निवारणार्थ भी इनका प्रयोग प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। रोग-निवारणार्थ इसकी एक भिन्न पद्धति ही बन गई, जिसे सूर्य रश्मि चिकित्सा कहते हैं। इसमें सूर्य किरणों में विद्यमान रंग विशेष को रोगी के शरीर पर डालते और उसी रंग की वोतल में किरण-सिद्ध पानी पिलाते हैं।

इसका भी एक सिद्धान्त है और उस सिद्धान्त का आधार प्राण तत्व ही है। शरीर में सात रंगों का समावेश प्राकृतिक रूप से रहता है और प्राण की दुर्बलता उन रंगों के अंश भाग में कमी कर देती है। सूर्य की किरणों में भी सात रंग रहते हैं तथा जिस रंग की शरीर में कमी होती है, उसी रंग की किरण शरीर पर डाली जाती है। उसके लिए अपेक्षित रंग विशेष के शीशे प्रयोग में लाए जाते हैं। उनके द्वारा शरीर में पहुँची हुई उस रंग की विशेष किरणें शरीरस्थ प्राण को सबल बनाती हैं, जिसके फलस्वरूप रोगी निरोग हो जाता है।

इस प्रकार सूर्य किरणों के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा प्राण को सबल बनाने में ही साधन मात्र है। यदि प्राण दुर्बल नहीं तो किसी प्रकार का रोग उत्पन्न नही हो सकता।

आयुर्वेद में शरीर को स्वस्थ रखने में बात, पित्त, कफ को मुख्य साधन माना गया है। यह तीनों ही साम्यावस्था में रहने चाहिए।

यदि यह असाम्य हो जाते है तो रोगों के कारण बनते है । आयुर्वेद ने सभी रोगों का कारण इन दोषों का प्रकोप ही माना है । कोई भी एक दोष कुपित हुआ तो अपने से सम्बन्धित रोगों का कारण हो सकता है। दो दोष एक साथ कुपित हो तो उनसे सम्बन्धित मिले-जूले लक्षण रहते हैं। तीनों दोषों के प्रकोप से तीनों के ही लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके कारण अधिक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

दोषों का प्रकोप भी प्राण की दुर्बलता से ही होता है । सभी औषधियाँ दोषों को दूर करने के लिए प्राणों को ही सबल बनाती हैं। जो दवाएँ उदर रोगों को दूर करने के लिए प्रयुक्त होती हैं, वे जठरस्थ प्राण को ही सबल बनाने का कार्य करती हैं। इसी प्रकार अन्यान्य रोगों पर की जाने वाली चिकित्सा सम्बन्धित अंग में व्याप्त प्राण की ही चिकित्सा है।

———

प्राण की अतीन्द्रिय सामर्थ्य के चमत्कार

योगीजन प्राण को हो सबल बनाने का अधिक अभ्यास करते हैं। वे प्राण की शक्ति से ही सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं; जिनके द्वारा होने वाली क्रियाएँ अभूतपूर्व हो जाती हैं तथा उन्हें देखने वाले व्यक्ति आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

अष्ट सिद्धियाँ प्रसिद्ध हैं—१-अणिमा, गरिमा ३-लघिमा, ४-प्राप्त्या, ५-प्राकाम्या, ६-ईशता, ७-वशिता, और ८-कामावसायिता। अणिमा सिद्धि के द्वारा अणु के समान सूक्ष्म भार कर लेने की शक्ति प्राप्त होती है। गरिमा द्वारा शरीर को भारी और बड़ा कर सकते हैं। लघिमा द्वारा आकार छोटे से छोटा कर सकते हैं। प्राकाम्या द्वारा कठिन वस्तुएँ भी सरलता से उपलब्ध हो सकती हैं। प्राकाम्या द्वारा इच्छा-पूर्ति का और ईशता द्वारा सर्वज्ञता का अधिकार होता हैं। वशिता द्वारा सब को वश में कर सकते है तथा कामावसायिता द्वारा सब भूतों के स्वभाव का अवस्थान योगी के सङ्कल्पा के अनुसार हो सकता है।

योग ग्रन्थों में और भी अनेक प्रकार की सिद्धियों की चर्चा मिलती है। यह सब सामर्थ्य अतीन्द्रिय कहलाती है। पाश्चात्य विशेषज्ञ भी इसी प्रकार की सिद्धि-सामर्थ्यों के अन्वेषण और अभ्यास में लगे हुए हैं। अभी तक उन्हें चार प्रकार की अतीन्द्रिय सामर्थ्यों का अनुभव विशेष रूप से हो पाया है—(१) क्लेयर वायेन्स, (२) फ्रीकांग्नीशन, (३) रेट्रोकाग्नीशन, और (४) टेलीपैथी।

क्लेयर वायेन्स का अर्थ परोक्ष-दर्शन से है। इसके द्वारा न दिखाई देने वाली वस्तुओं का सहज अनुभव हो सकता है। जिसमें यह सामर्थ्य आ जाती है, वे असाधारण रूप से अप्रत्यक्ष रूप से घटित होने वाली घटनाओं, दूरस्थ दृश्यों या साधारण मनुष्यों के जानने में न आ सकने वाले तथ्यों को सहज ही देख सुन सकते हैं।

फ्रीकाग्नीशन का अर्थ भविष्य सम्बन्धी ज्ञान से है। इसे प्राप्त कर लेने वाला व्यक्ति भविष्य द्रष्टा हो जाता है। उसके द्वारा की जाने वाली भविष्य वाणियाँ सौ प्रतिशत सही बैठती हैं।

रेट्रोकाग्नीशन का तात्पर्य भूतकालीन ज्ञान से है । इस सिद्धि से सम्पन्न साधक बहुत पुरानी घटनाओं की जानकारी भी सहज में ही कर लेता है ।

टेलीपैथी का अभिप्राय विचार सम्प्रेषण से है । इस सिद्धि को प्राप्त हुआ व्यक्ति किसी भी आधार या किसी भी यन्त्रादि के बिना अपने विचारों को सुदूर पहुँचा सकता और वहाँ के विचारों को सहज में ही ग्रहण कर सकता है ।

हमारे देश में और भी अनेक प्रकार की सिद्धियों का प्रयोग होता आया है । परकाया प्रवेश की सिद्धि को एक महती विद्या का रूप दिया गया है । इसका सिद्ध एक शरीर से दूसरे शरीर में अपना प्रवेश करने में समर्थ होता है । ऐसे अनेक सिद्ध पुरुष हुए हैं, जिन्होने मृत शरीरों में प्रवेश करके उन्हें जीवित कर दिया । उस शरीर की, जिसे छोड़कर उन्होंने परकाया प्रवेश किया था, उनके शिष्यगण तब तक रक्षा और सार-सँभाल करते रहे, जब तक वे पुन: उसमें लौटकर न आ गए ।

परकाया-प्रवेश का यह कार्य प्राण शक्ति का ही अद्‌भुत खेल है । आत्मा को एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर में ले जाने वाला प्राण ही है । उसके बिना न तो वह अपने शरीर को छोड़ सकता है, न दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो सकता है । जिन्होंने प्राण की इस प्रकार की उच्च साधना की है, वे जब परकाया प्रवेश कर सकते हैं, तब अन्त कार्य क्यों नहीं कर सकते ?

प्राण शक्ति की प्रखरता द्वारा अदृष्य आत्माओं, देवताओं तथा दिव्य शक्तियों से भी सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है । जो लोग इस प्रकार की सिध्दि प्राप्त कर लेते हैं, वे उन आत्माओं, देवताओं या दिव्य शक्तियों की प्रसन्नता प्राप्त करके अनेक सामर्थ्य प्राप्त कर लेते

हैं। ऐसे अनेक साधु-सन्त और महापुरुष हुए हैं जो उस प्रकार की सामर्थ्य प्राप्त करके लोकहित साधन में लगे रहे। उन्होंने जो कार्य किए वे आश्चर्यंजनक थे।

इसी प्रकार के सिद्ध पुरुष मृतात्माओं से बात-चीत करने में समर्थ होते है। पूर्वात्य देशों में ही नहीं, पाश्चात्य देशों में भी ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो मृतात्माओं से सम्पर्क बनाए रख कर उनके द्वारा बहुत सीं बातें जान लेते हैं और अनेक कार्यों में उनसे सहायता प्राप्त करते हैं।

मृतात्माओं से सम्पर्कं रखने वाले व्यक्तियों के ऐसे अनेक कार्यं प्रकाश में आ चुके हैं, जिनमें मृतात्माओं की बात-चीत उनके परिवारी जनों से कराई गई। उनमें ऐसे-ऐसे रहस्यों की जानकारी भी सम्मिलित रही है, जिन्हें सम्बन्धित व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था। कुछ घटनाएं तो ऐसी भी हुईं, जिनके विषय में मृतात्मा ही जानती थी, अन्य किसी को जानकारी नहीं थी। मृतात्मा के बताने पर ही उस प्रकार की घटनाओं की सचाई सिद्ध हुई।

अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार के चमत्कार दिखाते हैं। उनमें इच्छित वस्तु प्रकट कर देना, गुदड़ी से नए नोट निकाल देना आदि हैं। लोग कहते हैं कि जादूगर ही ऐसे चमत्कार दिखा देते हैं, तो इनमें क्या विशेषता हुई! सुना है कि कुछ व्यक्ति समय पर माँगी हुई वस्तु तुरन्त प्रकट कर देते हैं। यह जादू कहे या सिद्धि है। यह सब प्राण की प्रखरता की ही शक्ति है।

शाप और वरदान भी प्राण की ही शक्ति है। प्राचीन काल में ऋषिगण जो कुछ कह देते, वही हो जाता था। किसी को शाप देते तो उसे वैसा ही कुफल भोगना होता और यदि वरदान दे देते तो वह भी उसी रूप में फलित हो जाता। यह कार्य साधारण व्यक्ति के वश का

नहीं है, उन्हीं में ऐसी शक्ति होती है, जिनके प्राण अधिक सबल होते हैं।

किन्तु दुखियों तथा संतप्त हृदय वालों की आहों में भी बड़ी शक्ति होती है। किसी अत्याचारी या उच्छृङ्खल प्रवृत्ति वाले व्यक्ति द्वारा किए गए अनुचित व्यवहार से जिसे कष्ट पहुँचता है, उसमें प्राण तक उत्पीड़ित हो सकते हैं और प्राणों का वह उत्पीड़न ही आह बनकर उत्पीड़क को दण्ड देती है। उत्पीड़न करने वाले व्यक्ति जब दुःख भोगते हैं, तब उसका एक कारण सताए हुए व्यक्ति के प्राण से निकली हुई मूक आह भी हो सकता है।

इसी प्रकार शुभ आचरण के द्वारा यदि किसी व्यक्ति को कुछ सुख प्राप्त होता है तो उसकी आत्मा आशीर्वाद देती है उसे। यदि उस कार्य से प्राण तक प्रफुल्लित हो जाय तो उसका प्रभाव उपकार करने वाले मनुष्य पर पड़े बिना नहीं रहता। उसके फलस्वरूप उसे भी सुख की प्राप्ति होती है।

प्राण का यह अद्भुत प्रभाव है कि आप जिस किसी से सच्चा प्रेम करें, वह भी आपसे सच्चा प्रेम करने लगेगा। यह बात मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्ध में ही नहीं, पशुओं के सम्बन्ध में भी है। अनेक व्यक्ति हिंसक पशुओं तक को पालते हैं और वे पशु उनकी आज्ञा में चलते हैं।

कुत्तों की स्वामी-भक्ति की बातें तो बहुत बार सुनी जाती हैं। आज भी अनेक कुत्ते चोरों और डाकुओं से अपने पालक की रक्षा में प्राण तक दे बैठते हैं। इसी प्रकार घोड़ों के विषय में तो इतिहास ही बहुत-सी घटनाओं पर प्रकाश डाल चुका है।

उक्त सब वर्णनों में जो विशेषता मिलती है, वह सब प्राण शक्ति पर ही आधारित है। जैसे आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध है, वैसे ही प्राण का प्राण से भी अभिन्न सम्बन्ध है। इन सम्बन्धों को

भी हम अधिक सबल कर सकते हैं प्राण-साधना के बल पर। क्योंकि जब हमारा प्राणमय कोष अधिक विकसित होता है, तभी हम अपने में विभिन्न प्रकार की दिव्यताएँ समाविष्ट कर सकते हैं।

यद्यपि विगत समय में विज्ञान इस सम्बन्ध में नकारात्मक दृष्टिकोण रखता था। कोई भी वैज्ञानिक भारतीय ऋषियों की मान्यताओं को स्वीकार करने को तत्पर नहीं था। किन्तु आज के वैज्ञानिकों की दिलचस्पी इस ओर भी बढ़ गई है और अब वे इसके अन्वेषण और विवेचन में अग्रसर होने लगे हैं।

यह निश्चय है कि यदि हम प्राण तत्व के विषय में सोचें, समझें और उसकी साधना में तत्पर हो जाँय तो उसके परिणाम आशा से भी अधिक हो सकते हैं। बिना परिश्रम के कोई भी कुछ नहीं पा सकता। किसी भी छिपे हुए तथ्य का ज्ञान खोज से ही हो सकता है। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' की लोकोक्ति प्रसिद्ध ही है।

शरीरस्थ पंच प्राणों की क्रियाएँ

शरीर विज्ञान भी प्राण की स्थिति मानता है। वह भी इस तथ्य को स्वीकार करता है कि प्राण के बिना जीवन असम्भव है। प्राण नहीं रहता तो आयु समाप्त हो जाती है।

भारतीय शरीर विशेषज्ञों ने प्राण को पाँच प्रकार का माना है। यद्यपि प्राण एक हैं, किन्तु मनुष्य शरीर के स्थान भेद से उसके पाँच

प्रकार माने गये थे। यथा—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। इसी प्रकार पाँच उपप्राण हैं—देवदत्त, कृकल, कूर्म, नाग और धनंजय।

प्राणों के स्थान और कार्य भी पृथक्-पृथक् हैं। जब वह अपनी प्रखरावस्था में रहते हैं तब शरीर को पूर्ण रूप से स्वस्थ रखते हैं, इनके स्थानों और कार्यों पर यहाँ प्रकाश डाला जाता है—

प्राण–यह वक्षस्थल में रहता हुआ श्वास को खींचता तथा आहार को भीतर पहुँचाता है। शब्द के उच्चारण में इसी का प्रमुख रूप से योगदान है। षट्चक्र भेदन में यह अनाहत चक्र पर प्रभाव डालता है। ध्यानावस्था में पीत वर्ण की अनुभूति होती है।

अपान—इसका स्थान गुदा में है। यह मलों को बाहर फेंकने की शक्ति रखता है। यह मूलाधार चक्र को प्रभावित करता तथा इसकी अनुभूति नारंगी रंग की होती है। मल-मूत्र, रज-वीर्य, कफ, पसीना आदि मलों के विसर्जन में यही सहायक है। प्रसव के समय शिशु को बाहर फेंकने वाली क्रियाओं में अपान का ही योगदान रहता है।

समान—इसका स्थान नाभि में है। यह षट्चक्र भेदन में मणिपूर चक्र को प्रभावित करता है। ध्यानावस्था में इसकी अनुभूति हरे रंग की होती है। यह अन्न तथा सातों धातुओं का परिपाक करता और यथा स्थान पहुंचाता है।

उदान—इसका स्थान कंठ में है। यह विशुद्ध चक्र को प्रभावित करता है तथा बैंगनी रंग की अनुभूति देता है। बाहर से ग्रहण किये जाने वाले श्वास आहार, जल आदि का आकर्षक तथा ग्रहण इसी के द्वारा सम्पन्न होता है। यह शरीर के सधे रहने में सहायक होता है, इस कारण शरीर गिरने से बचा रहता है।

व्यान—यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। इसके द्वारा स्वाधिष्ठान चक्र पर प्रभाव रहता है। ध्यानावस्था में इसका गुलाबी रंग रहता है। इसका कार्य रक्त-संचार को समस्त शरीर में नियमित रखना तथा श्वास-निश्वास और ज्ञानतन्तुओं आदि के द्वारा शरीर को सुव्यवस्थित किये रहना है।

इन प्राणों के अतिरिक्त जो पाँच उपप्राण कहे गये हैं, वे एक-एक कर प्राणों के साथ संलग्न रहते हैं। प्राण के साथ नाग नामक उपप्राण का सम्पर्क रहता है, जि के कार्य डकार, हिचकी तथा वायु संचार, आदि हैं।

अपान के साथ कूर्म रहता है। इसका सम्बन्ध नेत्रों के समस्त क्रिया-कलापों से है। दृष्टि आदि को स्वस्थ बनाये रखना इसी उपप्राण का कार्य हैं।

उदान के साथ कृकल नामक उपप्राण रहता है। वह भूख-प्यास लगाने का कार्य करता है। इस उपप्राण की दुर्बलता भूख नहीं लगने देती तथा अजीर्ण और मन्दाग्नि की स्थिति उत्पन्न कर देती है।

उदान के साथ देवदत्त नामक उपप्राण संलग्न रहता है। अँगड़ाई या जंभाई आना इसी का कार्य माना जाता है।

व्यान के साथ धनंजय संलग्न रहता है। इसका कार्य शरीर के प्रत्येक अवयव की सफाई रखना है। इसकी दुर्बलता होने पर शरीर में मलों की बृद्धि हो सकती है।

इससे स्पष्ट होना हैं कि शरीर की सभी क्रियाएँ प्राण के द्वारा ही सम्पन्न होती है। मुख्य प्राण अपने सहका·ी उपप्राण की सहायता से अपने सम्बन्धित कार्यो को सुचारु रूप से निर्वाह करता है। प्राण तात्व सूक्ष्म सभूतियों का निर्माण करते हैं, जिन्हें स्थूल अनुभूतियों के रूप में परिवर्तित करना सम्बन्धित उपप्राण का ही कार्य है।

प्राणों के जो कार्य पृथक् रूप से वर्णन किये गये हैं, उनका कारण शारीरिक अंग विशेष के अनुसार ही है। प्राण और उपप्राण अपनी-अपनी साम्यवस्था में रहकर ही शरीर को स्वस्थ बनाये रहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई अंग विशेष अस्वस्थ हो जाय तो उसमें सम्बन्धित प्राण और उपप्राण की दुर्बलता वा असाम्यावस्था बहुत कुछ जिम्मेदार हो सकती है।

किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि किसी अंग विशेष के अस्वस्थ होने पर केवल सम्बन्धित प्राण-उपप्राण को ही दोषी समझ लिया जाय क्योंकि सभी प्राण, एक ही प्राण के विभिन्न भेद हैं, इसलिए एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। बहुत बार मनुष्य के अस्वस्थ होने में एक से अधिक प्राणों-उपप्राणों की मिश्रित क्रिया हो सकती है।

आप देखते होंगे कि एक ही विद्युत शक्ति पंखा चलाते, हीटर को गर्म करने, बल्ब द्वारा प्रकाश करने, रेडियो द्वारा समाचार संगीत सुनाते तथा टेलिविजन द्वारा दृश्य दिखाने आदि कार्यों में कारण बन जाती है। वस्तुतः एक ही विद्युत-प्रवाह के द्वारा यह अनेक कार्य सम्पन्न होते हैं।

प्राण के विषय में भी यही तथ्य समझना चाहिए। वह भी एक ही है, किन्तु उसकी धाराएँ प्रयोजनार्थ पृथक्-पृथक् हो गई हैं। प्रकृति के जो कार्य हैं, वे सब नपे-तुले और सभी प्रकार से अर्थपूर्ण हैं। निरर्थक कोई भी कार्य नहीं है। मनुष्य को उसीके द्वारा प्रेरणा मिलती है और वह जितने भी आविष्कार करने में सफल हुआ है, वह सब उसी प्रेरणा का परिणाम समझा जा सकता है।

प्राण उसी परब्रह्म का स्फुरण मात्र है। सृष्टि से पूर्व जब परमात्मा स्फुरण करना चाहता हैं तब वह प्राण को अनेक अंशों में होने की

प्रेरणा देता है । उसी को उस समय महाप्राण कहते हैं । वह सूक्ष्म-तिसूक्ष्म होता है । किन्तु प्राणियों के शरीरों में जीवात्मा के सहायक रूप से रहने के लिए वह जब सूक्ष्म रूप में प्रविष्ट होता है तब उसकी प्राण संज्ञा होती है । यही प्राण पांच धाराओं में विभाजित होकर पाँच नाम धारण कर लेता है ।

इसी प्राण के अंशभूत उपप्राण हैं । जैसे किसी विद्युत मोटर को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए उसमें कण्डैंसर लगा देते है, वैसे ही उपप्राण प्राणों को सुचारु रूप से कार्य करने में सहायक होते हैं । प्राणों की यही स्थिति है, जिसे समझना कुछ कठिन नहीं है ।

शरीर में प्राण को विभिन्न कार्यों का निर्वाह करना होता है । जब अनेक कार्य करने होते है तब उसके लिए साधन भी अनेक जुटाने होते हैं । प्रयोजनों के अनुसार ही साधन निश्चित किये जाते हैं । प्राण-उपप्राण के विविध प्रकारों में यही मुख्य कार्य है ।

वस्तुतः इस शरीर का निर्माण प्रोटीन, विटामिन, लौह, गन्धक, फास्फोरस, कैलाशियम, अमोनियाँ, बसा, लवण आदि के संयोग से बना है और इन सबसे अधिक अर्थात् नब्बे प्रतिशत भाग पानी का है । जैसे किसी मशीन को चलाने के लिये कोयला, पानी, ईंधन अथवा विद्युत आदि की अपेक्षा रहती है, वैसे ही शरीर को चलाने के लिए अन्न, जल वायु की आवश्यकता होती है । उस वायु की पूर्ति के लिए श्वास-निःश्वास का यन्त्र नासिका है । इसी के द्वारा श्वास लेते और छोड़ते हैं

वैज्ञानिकों के अनुसार श्वास लेने में जो वायु भीतर आती हैउसमें आक्सीजन रहती है । वे लोग ऑक्सीजन को ही प्राण वायु मानते हैं । यदि वह प्राण नहीं, तो प्राण का सहयोगी तत्व अवश्य है । शरीर के भीतर प्रतिक्षण विषैली गैस बनती रहती है, जिसे आधुनिक भाषा में कार्बनडाई ऑक्साइड कहते हैं । श्वास छोड़ने के साथ ही गैस बाहर

निकलती रहती है। इस प्रकार श्वास-प्रश्वास द्वारा शरीर शोधन का कार्य निरन्तर चलता रहता है।

स्वस्थ जीवन के लिए ऑक्सीजन की भी अनिवार्य आवश्यकता है श्वास द्वारा जो वायु ग्रहण की जाती है, उसमें ७९ प्रतिशत नाइट्रोजन २०.९६ प्रतिशत ऑक्सीजन और ०.४ प्रतिशत अन्य तत्व होते हैं। श्वांस द्वारा ग्रहण किया हुआ नाइट्रोजन तो निःश्वास के द्वारा तुरन्त बाहर निकल जाता है तथा आक्सीजन का कुल ४.५ प्रतिशत भाग ही शरीर ग्रहण कर पाता है। वहीं ऑक्सीजन पंच प्राणों के साथ विभाजित एवं वितरित हो जाता है।

कुछ वैज्ञानिक वायु में हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन, कैल्शियम, सोडियम, पोटाशियम फास्फोरस, लौह, मैग्नेशियम, आयोडिन, क्लोरिन और सिलिकम आदि के सूक्ष्म परमाणु विद्यमान मानते हैं। श्वांस के द्वारा इन सभी का ग्रहण हो जाता है। यह सभी प्राण के सूक्ष्मांश भी समझे जाते हैं।

इन तत्वों का प्रभाव शरीरस्थ नलिका विहीन अन्तःग्रन्थियों पर भी पड़ता है तथा इन्हीं के द्वारा उनमें हारमोन्स का पर्याप्त हाथ रहता है और यह हारमोन्स ही शरीर में शक्ति, बल, स्फूर्ति, बुद्धि आदि को भी प्राण अथवा प्राण का अंश मानते हैं।

शरीर को विभिन्न क्रियाओं में उपप्राणों के योगदान के समान ही इन हारमोन्स का भी योगदान है। यह शरीरस्थ रस-रक्तादि धातुओं के साथ मिलकर उनकी शक्ति बढ़ा देते हैं, जिससे विभिन्न अंगों का कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है।

यदि यह ग्रन्थियाँ समुचित मात्रा में हारमोन्स के स्राव में समर्थ न रहें तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है, क्योंकि रस-रक्तादि धातुओं की क्रियाएँ समुचित रूप से नहीं हो पाती। इसके फलस्वरूप शरीर में

विद्यमान प्राणों और उपप्राणों की उत्कृष्टता कम हो जाती हैं, जीवन तत्वों के कम होने पर न तो प्राण अपना कार्य सुचारु रूप से कर पाते हैं, न उपप्राण ही।

इस प्रकार प्राणों के विषय में जो वस्तु स्थिति है, वह पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों के अनुसार किसी न किसी रूप में स्वीकार की ही है। हमारे ग्रन्थ भी प्राण के अस्तित्व के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। उनके अनुसार भी हमारे शरीर का संचालन तथा उसकी गति को नियन्त्रित रखने में प्राण ही पूर्णरूप से उत्तरदायी है। वे ही शरीर के अधिपति और वे ही देवता स्वरूप हैं।

स्थूल शरीर को ही अन्नमय कोष कहते हैं। इसका निर्माण जिन प्रोटीन, विटामिन, लौह, गन्धक, फास्फोरस आदि तत्वों से हुआ है, उनकी कमी होने पर औषध-विज्ञान उन्हीं तत्वों का सेवन कराकर पूर्ति करता है। यह सभी तत्व प्राणशक्ति के विकार हैं। विद्युताणु का निर्माण भी प्राणशक्ति से ही होता है, क्योंकि उनका (इलेक्ट्रोन्स) का अनुभव शरीर में होता ही है।

हमारे उपनिषदों का मत है—'यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्' अर्थात् 'यह जो कुछ भी जगत् रूप में प्रत्यक्ष है, वह सब प्राण से ही निकला हुआ है।' इसका अभिप्राय है कि समस्त विश्व प्राण तत्व का ही परिणाम है।

परिणाम का अभिप्राय कार्य से है। कारण से निःसृत पदार्थ कार्य का रूप लेता है। कोई एक तत्व जब अन्य रूप में परिवर्तित होता है, तब उसे परिणाम कहते हैं। क्योंकि कारण के रूपान्तर वाली क्रिया ही परिणाम है। कुछ विद्वानों ने परिणाम के तीन भेद किये हैं—

(१) सजीव परिणाम, (२) रासायनिक परिणाम और (३) सामान्य एक तत्वी परिणाम।

सजीव परिणाम को आधुनिक भाषा में आर्गनिक चेंज कहते हैं। जैसे दूध के कीटाणु दही के कीटाणुओं के रूप में परिवर्तित हो जाँय। यही सजीव परिणाम है।

रासायनिक परिणाम, इसे निर्जीव परिणाम भी कह सकते हैं, जैसे जल और क्षार के योग से, जल को आग पर सुखाकर लवण बनालें। अथवा हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के योग से उसे पानी रूप कर लें। कपूर, पिपरमेंट और सत अजबाइन का योग (जिसे अमृतधारा कहते हैं) तरल बन जाता है। इसी प्रकार के रूप परिवर्तन रासायनिक परिणाम कहे जाते हैं।

यदि जल का परिवर्तन वाष्प या बरफ रूप में हो जाय तो यह सामान्य एक तत्वी परिणाम कहा जायगा। और भी अनेक उदाहरण इस विषय में दिये जा सकते हैं। इन समस्त रूप-परिवर्तनों में प्राण तत्व ही एक मात्र कारण है। उसी की क्रियाएँ विभिन्न रूप धारण कर लेती हैं।

प्राण शरीर और शरीरस्थ प्राण की अभिन्नता

प्राण-शरीर और शरीरस्थ प्राण की अभिन्नता का प्रतिपादन हमारे ग्रन्थों में होता रहा है। कुछ विद्वान् सूक्ष्म और स्थूल शरीर का भेद मानते हुए उन्हें एक दूसरे से भिन्न भी कहते रहे हैं। परन्तु दो या अधिक विजातीय तत्व परस्पर में अभिन्न रूप से मिल नहीं सकते। इस प्रकार यह मानना अनुचित न होगा कि जो तत्व सूक्ष्म शरीर में हैं, वे ही स्थूल शरीर में भी होने चाहिये।

आत्मा सर्वोपरि है, उसका प्राकटय परमात्मा से है। परमात्मा में जो विशिष्टता है, वह आत्मा में भी है। यह बात दूसरी है कि शरीर से

आवरित होने के कारण आत्मा की वह विशेषता छिपी रहती है। आत्मा से प्राण का प्राकट्य है, इसलिए उसमें भी परमात्मा की सभी विशेषताएं आंशिक रूप में अवश्य रहनी चाहिए। इसीलिए कुछ विद्वान् आत्मा और प्राण को समान एवं सजातीय मानते हैं।

इस प्रकार आत्मा की प्रमुखता के पश्चात् प्राण की प्रमुखता का निर्धारण होता है। प्राण के द्वारा ही मन, बुद्धि, अहंकार आदि का तथा इन्द्रियों का निर्माण होता है, इसलिए मन, बुद्धि आदि का आत्मा से जो योग होता है, उसका माध्यम एकमात्र प्राण तत्व ही है। प्रश्नोपनिषद् का मत है—

यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोऽधिकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे।

अर्थात्—'जिस प्रकार इस शरीर में छाया (आभा) की विद्यमानता है, वैसे ही मन के आश्रम में यह प्राण ही विद्यमान है।' स्पष्ट है कि मन का संचालन प्राण ही कर सकता है। मन में जो शक्ति हैं, वह प्राण की ही है।

प्राणमय कोष के रूप में विद्यमान प्राण ही सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से मिलाये रखता है। इस प्रकार शरीर की बाह्याभ्यन्तरिक विशिष्टताएं प्राण तत्व के कारण ही बनी रहतीं हैं। यद्यपि यह तथ्य भौतिक विज्ञान द्वारा पर्याप्त समय तक अमान्य किया जाता रहा। किन्तु तथ्य तो तथ्य है, कभी तो उजागर होना ही है उसे। अब शरीर विज्ञान के द्वारा क्रमशः बहुत सी जानकारियाँ मिल रही हैं और पाश्चात्य वैज्ञानिक भी हमारे ऋषियों की मान्यताओं पर ध्यान देने लगे हैं।

आज पश्चिम पूर्व की ओर दौड़ रहा है, अन्वेषण का उद्देश्य बताकर अथवा प्रकारान्तर से तथ्यों को स्वीकार करके अनेकों स्त्री पुरुष

हमारे ज्ञान-विज्ञान से आकर्षित होकर भारत वर्ष की पवित्र भूमि पर जिज्ञासु बने ठहरे हुए हैं।

वस्तुतः प्राण ही विभिन्न रूप धारण कर लेता है। यहीं शरीर में अनेक क्रियाओं का सचालक होता है। उपनिषद् का स्पष्ट कथन है—

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान्प्राणान् पृथक्पृथगेव संनिधत्ते।

अर्थात्-जिस प्रकार कोई सम्राट विभिन्न कार्यों के लिये अधिकारियों को नियुक्त करे कि इन ग्रामों को अपने अधिकार में रखो, उसी प्रकार प्राण भी अन्य प्राणों (प्राण, अपान, उदान, समान. उदान, व्यान) को पृथक्-पृथक् रूप से नियुक्त करता है।

उक्त उपनिषद्-वाक्य ने स्पष्ट कर दिया है कि पंच प्राण और प्राण और पंच उपप्राण एक ही मुख्य प्राण के निर्देशानुसार कार्य करते हैं। उनका पृथक् अस्तित्व नहीं है। जो कुछ भी है वह सब मुख्य प्राण का ही है। मुख्य प्राण ही अन्तःकरण चतुष्टय और इन्द्रियों को गतिशील बनाये रखता है।

इस प्रकार प्राण के महत्व का प्रतिपादन कोई काल्पनिक उक्ति नहीं है। आज का वैज्ञानिक भी यदि विचार दृष्टि से कार्य ले तो वह भी इस तथ्य से परिचित हो सकता है।

किन्तु आवश्यकता है इसके विज्ञान को जानने-समझने की। यदि ऐसा प्रयत्न न किया जायगा तो उसके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कठिन है। क्योंकि कोई भी विद्या बिना जाने समझे अपना फल नहीं दिखा सकती।

प्राण विज्ञान एक प्राचीन विज्ञान है, आधुनिक वैज्ञानिक उसे भी अमान्य नहीं कर सकते। वह एक ऐसी विद्या है, जिसे जानना प्रत्येक

व्यक्ति को अपेक्षित है। जो लोग आत्मोन्नति के लिए प्रयत्नशील हों, उनके लिये तो इस विद्या का ज्ञान बहुत ही आवश्यक है।

गीता में प्राण-साधना को एक यज्ञ ही माना है (अपाने जुह्वति प्राण), योगदर्शन में 'क्षीयते प्रकाशावरणम्' की मान्यता से प्राण के द्वारा उन आवरणों का क्षय होना स्वीकार किया है, जिसके द्वारा प्रकाश को ढँक लिया गया हो। अनेक तन्त्र ग्रन्थ, उपनिषद् और पुराणादि भी प्राण-साधना को शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के विकास में हितकर मानते हैं।

प्राण साधना शरीर की चेतना बढ़ाती है। यदि कोई रोग उत्पन्न हो गया हो तो वह भी उसके द्वारा दूर हो सकता है। मानसिक अशांति में इससे बहुत अनुकूल परिणाम मिलता है। प्राण सच्चिदानन्द ब्रह्म की ही शक्ति है, इसलिये विश्व का कारण रूप होता हुआ परिणाम रूप में भी परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि प्राण की सृष्टि उसी एक परमात्मा से हुई (इस प्राणमसृजत) जो सर्वशक्तिमान, सर्वगत और सर्व व्यापक है। फिर प्राण ने श्रद्धा और आकाशादि पंचभूतों को उत्पन्न कर दिया।

—×—

जीवन तत्व और प्राणों का पोषण

आहार शास्त्रियों के मत में शरीर की मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाये रखने और विभिन्न अंगों को स्वस्थ एवं क्रियाशील रखने के उद्देश्य से प्रोटीन्स, विटामिन्स, खनिज लवण, वसा आदि को आहार में उचित मात्रा में रखना आवश्यक है। उनका कहना है कि मनुष्य को उस प्रकार का भोजन करना चाहिए, जिसमें इन तत्वों का संतुलित मात्रा में समावेश रहे।

यद्यपि उक्त मान्यता ठीक हो सकती है, क्योंकि तत्वों की असंतुलित मात्रा ही विशेष रूप से स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। किन्तु पोषक तत्वों के सेवन के साथ ही हमें यह भी देखना चाहिए कि हमारे शरीर में उन तत्वों को पचाने की क्षमता भी है अथवा नहीं। यदि वह क्षमता नहीं है तो वे तत्व भी हमारे लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं।

कार्य न करने के आलस्य में पड़े रहने से वैसी क्षमता का ह्रास हो जाता है। क्योंकि परिश्रम के द्वारा ही पोषक तत्व पचाये जा सकते हैं। इसी प्रकार अधिक कार्य करने से भी मांसपेशियों में थकान उत्पन्न हो जाती है। इसलिए दोनों कार्य आवश्यक होते हैं–(१) परिश्रम करना और (२) अधिक परिश्रम न करना।

दोनों का परस्पर एक दूसरे से सम्पर्क है। परिश्रम किया जाय, किन्तु उतना ही जिससे थकान उत्पन्न न हो। सभी जानते हैं कि सब मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक क्षमता समान नहीं होती। किसी

में कम और किसी में अधिक। उसका प्रमुख कारण प्राणांश का न्यूनाधिक मात्रा में होना ही है। जिसमें प्राणांश की कमी होगी उसमें कम क्षमता और जिसमें प्राणांश की अधिकता होगी उसमें क्षमता भी अधिक होगी।

शरीर में कुछ पेशियाँ ऐसी भी हैं जो सदा कार्यरत रहती है। उन्हें विश्राम की कोई व्यवस्था प्रकृति ने नहीं की है। उनमें मस्तिष्क, फुफ्फुस, हृदय तथा पाचन-तंत्रादि आते हैं। यह मनुष्य के जन्म लेने से मरण पर्यन्त अपने-अपने कार्य में लगे रहते हैं। यदि यह कार्य-विरत हो जाँय तो समझलो कि शरीर में कुछ है ही नहीं।

इनको गतिशील कौन बनाये रखता है ? यदि इस पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जायगा कि प्राण ही इसमें प्रमुख कारण है। परन्तु किसी भी कार्य में 'अति' हानिकारक होती है। यदि हम प्राण से भी अपेक्षा से अधिक कार्य लेते रहेंगे तो वह भी दुर्बल होता चला जायगा, जिसके फल स्वरूप आयु ही घटेगी।

किसी मशीनी यन्त्र को टूट-फूट से बचाये रखने के लिए उसे बीच बीच में रोकना, विश्राम देना आवश्यक होता है। यदि वह निरन्तर चलता रहे तो गर्म होकर ठप्प हो सकता है अथवा घिस कर खराब हो सकता है।

यह शरीर भी मशीनी यन्त्र के समान ही है। इसलिए इसके उपयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वह क्रियाशील रहे, किन्तु सुचारु रूप से। यदि मनुत्य चाहे तो अभ्यास के द्वारा इसमें पूर्ण रूप से सफल हो सकता है।

हमें अपने शरीर में इतनी शक्ति तो रखनी ही होगी कि वह व्यवस्थित रहे तथा उसके स्वाभाविक कार्यों में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित न हो। योगीजन जहाँ परब्रह्म और मोक्ष की प्राप्ति के लिए

प्रयास करते थे, वहाँ शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के उद्देश्य से भी साधना करते थे।

कोई भी साधना, ठीक से तभी हो सकती है, जब शरीर स्वस्थ रहे। यदि शरीर अस्वस्थ रहा तो मन भी अस्वस्थ हो जायगा और तब न बैठने को जी चाहेगा, न साधना करने को।

शक्ति की उत्पत्ति ऊर्जा से है। ऊर्जा का अभिप्राय कार्य क्षमता से भी है। क्योंकि क्षमता ऊर्जा का अंश है। परन्तु ऊर्जा को स्तर के अनुरूप कई प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। जो रासायनिक मिश्रणों के प्रभाव से वह रासायनिक ऊर्जा, जो पदार्थों की गति से हो वह गतिशील ऊर्जा, जो पदार्थों की स्थिति के अनुसार हो वह स्थिति जन्य ऊर्जा तथा इसी प्रकार के सम्बन्धों से अन्यान्य प्रकार की ऊर्जाऐं उत्पन्न हो जाती हैं।

ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती, वह अविनाशी तत्व के रूप में सदा रहती है। हाँ, उसका रूप-परिवर्तन हो सकता है। पानी और आग के द्वारा वाष्प बन कर इंजिन चलाती है रासायनिक पदार्थों के जलने से भी ऊर्जा उत्पन्न होती है। अधिक क्या, जितने भी गतिवान पदार्थ हैं, सब ऊर्जा के द्वारा ही संचालित है। ऊर्जा ही उनके रूप को अक्षुण्ण रख सकती है।

पृथिवी में जो उत्पादन क्षमता है, वह भी ऊर्जा ही है। बीज फूट कर पौधे का रूप लेता है तब भी ऊर्जा ही उसमें मुख्य कारण होती है। बिजली का उत्पादन भी ऊर्जा के द्वारा होता है। रासायनिक क्रिया से भी विद्युत उत्पन्न हो जाती है। किन्तु वह भी ऊर्जा से भिन्न नहीं है।

प्राण भी ऊर्जा ही है। शक्ति दो प्रकार की मानी जाती है-एक सूक्ष्म स्तर की और दूसरी स्थूल स्तर की। सूक्ष्म स्तर की शक्ति को महाशक्ति कहते हैं। स्थूल स्तर की शक्ति सामान्य होती है। यद्यपि वह भी सूक्ष्म शक्ति से ही उत्पन्न है।

महाशक्ति ही प्राण है, इसे चाहे ऊर्जा कहें अथवा महाप्राण इसकी अद्भुत क्षमता का अनुमान इसी से लगा सकते हैं कि यह सदैव गतिवान रहता है। इसकी गति कभी रोकी नहीं जा सकती मनुष्य अपने जन्म से मृत्यु पर्यन्त इसी शक्ति के बल पर गतिवान रहता है जब यह शक्ति अपनी क्रिया बन्द कर देती है तभी शरीर को मृत घोषित कर दिया जाता है।

प्राण-ऊर्जा में दो प्रकार की शक्ति विद्यमान है। जिनमें एक शक्ति उपादान रूप है। उसका कार्य निर्माण या सृजन करना है। इससे जो उत्पन्न होता है। वह कार्य अथवा परिणाम कहा जाता है। इसे कार्य अथवा भोग्या भी कह सकते हैं।

दूसरी शक्ति वह है जो भोग्या के संयोग से चेतना रूप में व्यक्त होती है। सत्व पर इसका प्रत्याभास पड़ने से ही इसका काकट्य है। इस प्रकार रवि भोग्या शक्ति रूप, तथा प्रकृति और प्राण भोक्तृत्व शक्ति रूप है।

परब्रह्म सच्चित् रूप है। उससे जो शक्ति व्यक्त होती है, वह प्राण कहलाती है। उसके दो प्रवाह हो जाते हैं, जिनमें से एक प्रवाह सत्शक्ति प्रधान और दूसरा प्रवाह चित्शक्ति प्रधान होता है। सत्-शक्ति ही सृजन शक्ति है और चित्-शक्ति प्राणशक्ति है। किन्तु सत्शक्ति प्राणशक्ति से भिन्न नहीं, वरन् एक प्राणशक्ति के दो ही रूप हैं।

यह निश्चित है कि चन्द्रमा में जो प्रकाश है, उसका कारण सूर्य है। सूर्य की किरणें जब उसे तपाती हैं, तब तापमान की अधिकता होने पर उसका चेतनांश बहुत कुछ क्षीण हो जाता है, जिसके फलस्वरूप पृथिवी को भी उचित तापमान देने में असमर्थ हो जाता है।

किन्तु उसमें निहित सृजनात्मक शक्ति, जिसे कार्य या भोग्या कहते हैं, कभी नष्ट नहीं हो पाती। पृथिवी पर वह उस अवस्था में सोम कहलाता है।

शास्त्रकारों ने चन्द्रमा को रार्य भी कहा है। वह चेतनांश की कमी के कारण रार्य कहलाता है। वह सत्-शक्ति प्रधान है, किन्तु सत्-शक्ति भी प्राण की एक धारा है।

सूर्य का प्रकाश तो तीव्र होता ही है, उष्णता भी होती है उसमें। जब कि चन्द्रमा में प्रकाश इस प्रकार का होता है कि उससे शीतलता का अनुभव हो। सूर्य का जो उष्ण प्रकाश उस पर पड़ता है, उसे उसकी रूखी चट्टानें सोख लेती है। चन्द्रमा में अपना प्रकाश तो होता ही नहीं, वह तो सूर्य के प्रकाश को प्रत्याभासित मात्र करता है।

प्रत्येक वर्ष में दो अयन माने जाते हैं—१. उत्तरायण और २. दक्षिणायन। इन दोनों अयनों में भी परस्पर में भिन्नता है। इनमें प्रथम चित्-प्रधान और दूसरा सत्-प्रधान है। चित्प्रधान को प्राण और सत्प्रधान को रार्य कहते हैं।

आचार्यों के अनुसार जो लोग उत्तरायण में शरीर का त्याग करते हैं वे सूर्य-मण्डल के विजेता होते हैं। इन्हें उच्च लोक या अभय पद की प्राप्ति सुलभ होती है। यह लोग अपने तप, जप, योग, भक्ति आदि के प्रभाव से देवयान मार्ग द्वारा जाते हैं। ऐसे मोक्ष के अधिकारी साधकों का आवागमन छूट जाता है।

महाभारत का प्रसिद्ध प्रसंग है भीष्म पितामह उत्तरायण की प्रतीक्षा में शर-शय्या पर पड़े हुए महीनों तक अपने प्राणों को रोके रहे। वे जानते थे सूर्य के दक्षिणायन रहते हुए मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

दक्षिणायन में शरीर छोड़ने वालों को सूर्य-मण्डल का या मोक्ष का

अधिकार नहीं मिल पाता। ऐसे मनुष्य वाणी, कूप, तड़ाग, धर्मशाला, मन्दिर आदि का निर्माण प्रभृति इष्टापूर्त रूपी धर्म कार्य तो करते हैं, इसलिए उन्हें अधोगति में तो नहीं पड़ना होता, किन्तु वे पितृयान मार्ग द्वारा चन्द्रलोक विजय कर पाते हैं। उन्हें पितृपद की प्राप्ति होती है तथा जन्म-मरण के चक्र से मुक्त नहीं हो पाते।

इन तथ्यों से सूर्य और चन्द्रमा में निहित भिन्न-भिन्न विशेषताओं का ज्ञान सहज ही हो जाता है। जैसे शास्त्र सूर्य के प्राण होने का प्रतिपादन जोरदार शब्दों में करते हैं। चन्द्रमा भी रार्य रूप एवं सत्-शक्ति प्रधान होने के कारण प्राण ही है।

—×—

प्राण सबलता से मरने पर भी गतिशीलता बनी रह सकती है

यदि प्राण सबल हों तो शरीर से देर से निकलते हैं। शरीर के काट दिये जाने पर भी उसमें बहुत देर तक स्पन्दन बना रहता है। इस विषय में तिब्बती लामा श्री टी० लाबसाँग रम्पा ने अपनी पुस्तक 'यू फार एवर' में लिखा है कि 'जब फ्रांस में क्रांति हुई थी, तब एक देशद्रोही का सिर धड़ से उड़ा दिया गया था। उस समय सिर कट जाने पर भी उसके मुख से स्फुट बुदबुदाहट की ऐसी क्रिया होती रही, मानों वह

कुछ कहना चाहता हो। यह घटना फ्रांसीसी शासन के रिकार्ड में अभी तक मिलती है।'

एक इससे भी अधिक शक्तिशाली प्राण की घटना हमने मथुरा में सुनी थी, जिसका सारांश यह है कि 'एक बार भरतपुर राज्य के अन्तर्गत पथैने के जागीरदार राजा का भरतपुर नरेश से मनमुटाव हो गया और उसके फलस्वरूप युद्ध छिड़ गया। उसमें पथैने का राजा युद्ध करते-करते मारा गया। उसका सिर कट गया था, तो भी धड़ के साथ हाथ की तलवार बहुत देर तक उसी प्रकार घूमती रही, जैसे कि वह युद्ध कर रहा हो। वस्तुतः यह प्राण की प्रखरता का ही अद्भुत उदाहरण है।

एक बार एक छपकली की पूँछ कट गई थी। छपकली तो भाग कर एक ओर चली गई, किन्तु उसकी पूँछ बहुत देर तक नाचती रही, तब तक, जब तक उसके प्राण न निकल गये।

उक्त घटनाएँ काल्पनिक नहीं हैं। यह तक तथ्य है कि प्राण यदि सबल है तो वह शरीर के अंग-अंग में समान रूप से व्याप्त रहता है और सभी अंग सुचारु रूप से अपने-अपने कार्य में लगे रहते हैं। जब कि दुर्बल प्राण अपनी शक्ति का अधिक विस्तार नहीं कर पाते। इसलिये उनकी गति सभी अंगों को सुचारु रूप से कार्यरत नहीं रख पाती। यही कारण है कि अनेक व्यक्ति अस्वस्थ हो जाते हैं और कुछ तो पक्षाघात तक के शिकार बन जाते हैं। जिस अंग में पक्षाघात होता है, वह अंग अवश्य ही प्राण शक्ति के समुचित संचार से वंचित रह जाता है। क्योंकि प्राण शक्ति ही अपने प्रभाव (फोर्स) से रक्त को सभी अंगों की नस-नाड़ियों में संचरित करती है।

यही कारण है कि प्राण को जीवन की संज्ञा दी जाती है। जिस अङ्ग में पक्षाघात हो जाता है, उस अङ्ग का जीवन चला जाता है। वह अङ्ग प्राण के उपकार से वञ्चित रह जाता है। शरीर से लगा रहकर भी वह अपनी क्रिया शक्ति को खो बैठता है। यदि हाथ पर आक्रमण हुआ तो हाथ बेकार. पाँव पर हुआ तो चलना फिरना ही समाप्त। जिह्वा पर हुआ तो बोल नहीं निकलता। कुछ का मुख टेढ़ा हुआ देखा जाता है तो किसी का शरीर झुक जाता है।

बहुतों को कमर झुकाकर चलते देखते हैं। उसका कारण भी प्राण की दुर्बलता ही हैं। इससे यह समझा जाना चाहिए कि शरीरों के आधार प्राण हैं। प्राण हैं तो शरीर हैं। शरीर क्या, प्राण के बिना तो आत्मा भी नहीं रह सकती शरीर में। प्राण चले तो आत्मा भी चली। क्योंकि आत्मा शरीर की अपेक्षा नहीं करती। उसे अपेक्षा है तो केवल प्राण की क्योंकि उसका वाहन प्राण ही है।

एक सन्त कहते हैं कि आत्मा निष्क्रिय है, उसमें गति नहीं, रति नहीं, और मति का भी अभाव रहता है। उसे जो कुछ भी प्राप्त है वह सब प्राण की ही शक्ति है। प्राण की शक्ति के बिना आत्मा को आश्रय नहीं मिल सकता।

उनके मन में यह प्राण आत्मा के लिए बन्धन स्वरूप भी हो जाता है। क्योंकि जब तक प्राण चाहें तभी तक आत्मा रहती है। वस्तुतः प्राण ही उसे रोके रहता है आयु पर्यन्त।

यद्यपि उक्त विचार सन्त के अपने विचार हैं। फिर भी उनमें यह तथ्य तो है ही कि जब मनुष्य मरने को होता है तब आत्मा का निर्गमन तभी होता है जब प्राण उत्क्रमण करने लगते हैं। मनुष्य अन्धा हो जाय तो मरता नहीं, बहरा या गूँगा हो जाय तब भी उसका जीवन यथावत रहता है। वह मरता तभी है। जब प्राण निकल

जाते हैं। उसके बाद ही शरीर में सड़न क्रिया का आरम्भ हो सकता है।

ब्रह्मसूत्र में कहा है—'तदन्तर प्रतिपत्तौ रहति संपरिष्वक्तः प्रश्न निरूपणाभ्याम्' अर्थात् 'मरने के पश्चात् आत्मा सूक्ष्म शरीर के सहित एक कोष से आवृत्त रहता है और वह कोष जल से निर्मित है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है—'पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' अर्थात् पाँचवीं आहुति में जल ही देह रूप हो जाता है। शङ्कराचार्य जी ने इस पर मत व्यक्त किया है—'तस्माद्दिभः परिवेष्टितो जीवोरंहति (ब्रजति) इति गम्यते' अर्थात् 'जीव (जिस) जल से आवृत्त हुआ जाता है, वह जल सामान्य जल या वाष्प तो नहीं होना चाहिए, जल का कोई रूपांतर ही हो सकता है। वह रूप 'आपोमयोहि प्राणाः' अर्थात् जलमय प्राण ही है।

सूक्ष्म शरीर मे पञ्च प्राण, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय रहती हैं। अन्तःकरण चतुष्टय भी इसी शरीर में विद्यमान रहता है। साथ ही उस पर जलमय प्राण तत्व का भी एक कोष बना रहता है। इसका आकार स्थूल शरीर के ही समान होता है और यही लिङ्ग शरीर कहलाता है।

इस जल में पञ्चीकृते हुए पञ्चभूतों के तत्व भी विद्यमान रहते हैं। उक्त कोष में जो जलात्मक प्राणांश रहता है, वही स्थूल शरीर के जलांश से मिल जाता है, जिससे सूक्ष्म और स्थूल शरीरों का संयोग बना रहे।

इस प्रकार भी यह सिद्ध होता है कि प्राण का आत्मा से अभिन्न सम्बन्ध रहता है और वह प्राणात्मक जल से चारों ओर घिरी रह कर ही जाती-आती है। प्राण तत्व ही वह तत्व है जिसे चेतन ऊर्जा कहते

हैं। ऊर्जा का अर्थ शक्ति भी हो सकता है, किन्तु पाश्चात्य भाषा में इसे ऐनर्जी कहते हैं।

भौतिक विज्ञान ने ऐनर्जी छः प्रकार की कही हैं—(१) हीट, (२) लाइट, (३) साउण्ड, (४) फ्रक्शन, (५) इलेक्ट्रिक, (६) मैगनेटिक। यह क्रमशः ऊष्मा, प्रकाश, ध्वनि, घर्षण, विद्युत् और चुम्बक के नाम से समझी जा सकती है। वैज्ञानिकों का मत है कि इनमें से किसी भी एक प्रकार की ऊर्जा को अन्य प्रकार की ऊर्जा के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

यद्यपि यह ऊर्जाएँ चेतना ऊर्जा (लाइव ऐनर्जी) से बिल्कुल भिन्न प्रकार की हैं तो भी इनके उदाहरण से यह समझना कठिन नहीं होगा कि चेतन ऊर्जा उन ऊर्जाओं से बहुत अधिक शक्तिमयी है तो वह विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं के रूप में क्यों नहीं बदल सकती ?

चेतन ऊर्जा में दिव्यता है। भौतिकता से परे जो कुछ भी है वह महान है और भौतिकता में दिव्यता की ही शक्ति सामर्थ्य विद्यमान रहती है। ऊर्जा कोई भी हो, नष्ट नहीं होती, उसका रूपांतरण होता रह सकता है। उसे एक पदार्थ से दूसरे में स्थानान्तरित होने की क्षमता भी प्राप्त है। उसका सम्बन्ध किसी स्थूल पदार्थ से यथार्थ रूप में तो नहीं है किन्तु कोई भी भौतिक पदार्थ ऊर्जाओं के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं है। सभी पदार्थों पर किसी न किसी ऊर्जा का प्रभाव अवश्य होना चाहिए।

प्राण की अलौकिक ऊर्जा

प्राण की ऊर्जा अलौकिक है, किसी भी लौकिक ऊर्जा की उससे तुलना नहीं हो सकती। उसके प्रभाव क्षेत्र में आने वाले सभी पदार्थ उसके अनुकूल रह सकते हैं। वह जिस क्षेत्र में रहती है, उस क्षेत्र में

जीवन रहता है, शक्ति रहती है। किन्तु किस परिमाण में जीवन या शक्ति रहे, यह प्राणशक्ति की न्यूनाधिक मात्रा पर निर्भर है।

भौतिक विज्ञान कितना ही आगे क्यों न बढ़ गया हो, जितनी दूर हमारे मन्त्र द्रष्टा ऋषि पहुँच गए थे, उस मार्ग के तो आरम्भ में भी उसकी गति नहीं हो पाई है। वह आज तक नहीं समझ पाया कि जड़ वस्तुओं में चेतन का प्रकाश किस प्रकार सम्भव हुआ? अभी तक किसी वैज्ञानिक ने चेतन शक्ति के विकास का प्रयास नहीं किया। करे भी तो कैसे, किसी बात को समझ लिया जाय तभी तो उसके विकास की दिशा में कोई कदम उठाया जा सकता है।

परन्तु हमारे मन्त्र द्रष्टा ऋषि प्राण विद्या के पारङ्गत थे। उन्हें सजीव सृष्टि के प्रकट होने का ज्ञान था इसलिए सूखे वृक्षों में भी पत्ते निकाल सकते थे। मरे हुओं में प्राण फूँकना भी उन्हें आता था। शल्य चिकित्सा का जितना उत्कृष्ट ज्ञान उन्हें था, आज का शल्य चिकित्सा विज्ञान उसके पासङ्ग पर भी नहीं पहुँच सका है।

किन्तु इसमें निराश होने का भी कोई कारण नहीं। यदि हम अपने पूर्व सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए पाश्चात्य विज्ञान के प्रति समयान्वयात्मक और क्रियात्मक दृष्टिकोण अपनाएँ तो उसे आगे बढ़ाने में सफल हो सकते हैं। अनेक तथ्यों की जानकारी में आधुनिक विज्ञान हमारा सहायक हो सकता है, किन्तु तभी जब उसे लौकिक दृष्टिकोण से पारलौकिक दृष्टिकोण की ओर मोड़ दिया जाय।

प्राण की ऊर्जा के भी अनेक रूप हो सकते हैं। वह भी अग्नि, विद्युत्, गैस आदि का रूप ले सकती है। यह बात किसी अनुमान के आधार पर नहीं, वरन् शास्त्रीय आधार कही जा रही है। प्रश्नोपनिषद्

ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है—'प्राणाग्नय एवास्मिन् ब्रह्मपुरे जागृति' अर्थात् 'ब्रह्मपुर (शरीर) में प्राण ही अनेक अग्नियों के रूप में जलता रहा है।

मानवीय विद्युत के विषय में अनेक तथ्य समय-समय पर सामने आते रहे हैं। अमेरिका की घटना है कि फ्लोरिडा में एक मार्ग पर चलते मनुष्य के शरीर से आग की नीली लपटें निकलने लगीं। अन्य व्यक्तियों ने उस आग को बुझाने के लिए उस पर एक बाल्टी पानी डाल दिया। कुछ देर के लिए तो आग शान्त हुई, किन्तु पानी सूखने पर पुनः ज्वाला भक से जल उठी और वह मनुष्य वहीं भस्म हो गया। फ्लोरिडा के मेडिकल जर्नल में प्रकाशित लेख के अनुसार वहाँ के वैज्ञानिक आश्चर्य में पड़ गए कि मनुष्य देह में जो नब्बे प्रतिशत जलांश होत है, उसे जलान को पाँच हजार फारेनहीट डिग्री होनी अपेक्षित है। ऐसी स्थिति में वह सहसा कैसे उत्पन्न हो जाती है।

यद्यपि शरीरस्थ कोषों में प्रोटोप्लाज्मा में अग्नि स्फुल्लिग विद्यमान रहते हैं, किन्तु उनके कारण शरीर का ही जल उठना सम्भव नही है। क्योंकि अग्नि तभी बन सकती है जब प्रोटोप्लाज्मा किसी प्रकार उच्च प्लाजमा के रूप में परिवर्तित हो जाय, जो कि एकाएक कदापि सम्भव नहीं है।

कहते हैं कि अमेरिका में इस प्रकार की अब तक लगभग दो सौ घटनाएँ घटित हो चुकी हैं। इङ्गलैण्ड में भी एक बार इसी प्रकार की एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटित हुई थी। चेम्सफोर्ड में एक शानदार होटल में आर्केस्ट्रा की मधुर ध्वनि पर नाच चल रहा था तभी एक स्त्री के शरीर से आग की तीव्र नीली ज्वाला निकल पड़ी वह ज्वाला देखते-देखते ही नीली से लाल हो गई और वह सुन्दरी क्षण

भर में ही भस्म हो गई। यह घटना सन् १९३८ की है। इससे लोग बहुत ही आश्चर्य चकित और भयभीत हो गए थे।

इसी प्रकार की और भी घटनाएँ सुनी गईं और यह सब प्रोटोप्लाजमा (प्राण) के उच्च प्लाजमा (महाप्राण) रूप में परिवर्तित होने के ही कारण हुआ समझा जाता है। यह प्राण की ही विशिष्ट ऊर्जा का प्रभाव हो सकता है।

मानवीय विद्युत के झटके कभी-कभी प्रायः सभी मनुष्यों के अनुभव में आते रहते हैं। बहुत बार ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई लहर उठ रही हो। कभी सनसनाहट का तो कभी सिहरन का अनुभव होता है। सामान्यतः यह विद्युत मनुष्यों के नेत्रों में और सिर में सबसे अधिक परिणाम में अनुभव में आती है। बहुतों के मुख पर अधिक तेज दिखाई देता है। कुछ की आँखों में अधिक चमक देखी जाती है।

प्राण की प्रखरता वाणी में होती है तो उसमें ओज भर जाता है। जिनके ओजस्वी भाषण को मन्त्र मुग्ध होकर सुना जाता हो, उनमें अवश्य ही प्राण ऊर्जा की अधिकता वाणी के साथ रहती है। कुछ लोगों के व्यक्तित्व को देखकर ही लोग उनसे प्रभावित हो जाते हैं, वैसा व्यक्तित्व प्राण शक्ति की अधिकता का ही परिचय देता हैं।

मानवीय विद्युत के दो प्रवाह

वस्तुतः मानवीय विद्युत प्रत्येक शरीर में दो प्रवाह वाली रहती है। उनमें से एक प्रवाह ऊपर की ओर और दूसरा नीचे की ओर जाता है। उस विद्युत का केन्द्र नाभि मण्डल में हैं, जिसके निकट ही, कुछ नीचे की ओर मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति पड़ी सोती है। कुछ विद्वान्

मानवीय विद्युत के पृथक्-पृथक् दो केन्द्र मानते हैं—(१) मस्तिष्क और (२) मेढ़ स्थान।

ऊर्ध्वगामी विद्युत मस्तिष्क में केन्द्रित रहती है, जिसके कारण मनुष्य विवेक बुद्धि सम्पन्न, विद्वान्, शूर-वीर, साहसी, चतुर, स्फूर्तिवान तथा प्रतिभाशाली होता है। व्यक्तित्व निखार, तेजस्विता, ओजस्विता, आदि की निर्भरता इसी केन्द्र पर है। जो लोग आत्मोन्नति के लिए योगाभ्यास प्रभृति क्रियाओं में सफल होते देखे जाते हैं, उनमें ऊर्ध्वगामी प्रवाह ही अधिक प्रभावशाली होता है। जो लोग स्वर्ग या मोक्ष के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, उनके कार्यों में यही विद्युत सहायक होती है।

अधोगामी विद्युत का जो केन्द्र जननेन्द्रिय में है, उसके द्वारा दाम्पत्य जीवन का आनन्द तथा सन्तान सुख की प्राप्ति होती है। गृहस्थाश्रम के निर्वाह में यही विद्युत अधिक सहायक सिद्ध होती है। विभिन्न प्रकार के आमोद-प्रमोदों में भी इस विद्युत का पर्याप्त प्रभाव रहता है।

यदि इस विद्युत का यहाँ सञ्चय किया जा सके तो मनुष्य अत्यन्त शक्तिशाली हो सकता है। ब्रह्मचर्य व्रत पालन के लाभों को बहुत से व्यक्ति जानते है। उसके बल पर मनुष्य चाहे सो कर सकता है। बड़े-बड़े पहलवान ब्रह्मचर्य के बल पर ही मैदानी कुश्तियों में चुनौती देते और सफलता पाते हैं।

वहीं कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है। योगीजन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जब प्राण की उच्च साधना करते हैं तब उसके फल स्वरूप सोती हुई कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है। अधोगामी ऊर्जा के सहयोग से वह सर्पिणी षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जा पहुँचती है। उस स्थिति में अधोगामी और ऊर्ध्वगामी दोनों ऊर्जाएँ

परस्पर के संयोग से मनुष्य को चमत्कारी पुरुष बना देती है। फिर वह उन सभी कार्यों के करने में समर्थ हो जाता है, जिन्हें कोई सामान्य पुरुष सोच भी नहीं सकता।

अणिमादि सिद्धियाँ, आकाश-गमन, पानी पर जलना, अग्नि में प्रविष्ठ होना, दिन में रात और रात में दिन कर देना, इच्छित रूप बना लेना दूसरे के शरीर में प्रवेश करना अथवा अन्यान्य अलौकिक एवं अद्भुत कार्य करना आदि सभी कुछ कुण्डलिनी जागरण के पश्चात् सम्भव है।

अद्भुत लेखन शक्ति, कवित्व शक्ति वक्तृत्व शक्ति, गायन शक्ति आदि की उच्चकोटि की साधना में भी कुण्डलनी शक्ति का बहुत कुछ योग होता है। वस्तुतः यह सब मानव शरीर में विद्यमान उस विद्युत प्रवाह से ही होता रहता है, जिसकी जानकारी हमें स्वयं नहीं होती।

यदि हम उस विद्युत की शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करते रहें तो बहुत से आश्चर्यजनक कार्यों के करने में सफल हो सकते हैं। प्राचीन ऋषियों में शाप द्वारा तुरन्त भस्म कर देने की जो शक्ति थी, उसका कारण उनकी वह ऊर्जा ही थी, जिसके ऊर्ध्वगामी और अधोगामी दोनों ही प्रवाह उनके अनुकूल रहते थे। उसी शक्ति के बल पर वे जिस पर प्रसन्न होते थे, उसे तुरन्त ही कृतकृत्य कर देते थे।

प्राण ऊर्जा के बल पर मनुष्य क्या नही कर सकता ? संसार में अब तक जितने भी वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, वे सब इसी ऊर्जा के प्रभाव से हो पाए। बहुत से वैज्ञानिक अपने आविष्कारों में सफल नही हो पाते, उसका कारण उनमें प्राण शक्ति की दुर्बलता भी थी।

बहुत से मनुष्य अतीन्द्रित उपलब्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। उनकी उन उपलब्धियों में सूक्ष्म शरीर की सक्रियता का भी पूर्ण योग रहता है। प्राण की साधना के द्वारा सूक्ष्म शरीर की शक्तियों को जाग्रत किया जा सकता है। बहुत से चमत्कारिक कार्य सूक्ष्म शरीर की प्रखर शक्ति के द्वारा सम्पन्न होते देखे गये हैं।

एक बार, एक सज्जन ने बताया कि एक महात्मा जी ने आकर कहा—'तू बहुत से झंझटों में फँसा है, उनसे उबरने का प्रयत्न कर।' परन्तु उन्होंने उनकी उस बात पर ध्यान न दिया और एक चवन्नी देकर विदा करना चाहा। इस पर महात्मा ने कहा—क्या करूँगा इस चवन्नी का ? ऐसी चवन्नियों का तो ढेर लगा है मेरे पास।' उन्होंने कहा—'दिखाओ।' महात्मा जी ने अपने जेब से बहुत सी नई-नई चवन्नियाँ निकालकर सामने रख दीं। वे चवन्नियाँ ऐसी थीं जैसे अभी टकसाल से ढलकर आई हों।

महात्मा जी चवन्नियाँ निकालते रहे। उनका इतना ढेर लग गया, जितना दस जेबों में भी नहीं भरा जा सकता। यह देखकर वे सज्जन उनकी ओर आकर्षित हुए बोले—'क्षमा कीजिए महात्मा जी ! मुझसे बड़ी भूल हो गई।' महात्मा ने हँसकर कहा—'कोई बात नहीं तेरा पुत्र भारी सङ्कट में फँस गया था, अब तक वह बिल्कुल ठीक है।' यह कहकर महात्माजी चलते बने, बहुत रोकने पर भी न रुके।'

महात्मा जी की बात से वे बहुत चिन्तित हो उठे। पुत्र पर क्या सङ्कट आ गया, यह समझ में नहीं आ रहा था। उन्होंने तुरन्त जानेका निश्चय किया और रात्रि की गाड़ी पकड़ कर दूसरे दिन अपने पुत्र के पास जा पहुँचे। वहाँ पता चला कि पुत्र जिस कमरे में सो रहा था, वह अकस्मात रात मे ही गिर गया। यदि एक महात्मा जैसा व्यक्ति उसे हटाकर बाहर न ले आता तो उसका दब कर मर

जाना निश्चित था। उसने महात्मा का जो हुलिया बताया वह ठीक उन्हीं महात्मा जी से मिलता था, जिन्होंने जेब से चवन्नियां निकाल कर ढेर लगा दिया था।

उन सज्जन का कहना था कि महात्माजी के विषय में पुत्र से उक्त बात जानकर मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक गया। मैं सोचने लगा कि काश मैंने उन्हें ऐसा परोपकार का ही समझा होता।

वस्तुतः महात्माजी कोई परोपकारी व्यक्ति ही होंगे। उन्होंने अपनी साधना द्वारा शक्ति को इस सीमा तक बढ़ा लिया होगा। सूक्ष्म शरीर में शक्ति जागरण द्वारा वह सभी सम्भव है, जो महात्माजी ने किया था।

देशी-विदेशी चमत्कारी घटनाएँ

पाश्चात्य देशों की भी ऐसी अनेक घटनायें प्रकाश में आती रहतीहैं अल्जीरिया की एक घटना है, जिसके एक गाँव में कैप्टिन डाक्टर डुबो कुछ रोगियों को देखने गये थे। उस गाँव के मुखियों ने उन्हें धन्यवाद दिया और साथ हीसूक्ष्म शरीरके विषय में भी कुछ चर्चा की। कैप्टिन के उन बातों मे कोई रुचि नहीं थी। यह देखकर मुखिया ने कहा—'आप विश्वास नहीं करते तो प्रत्यक्ष देखिये।

मुखिया ने कुछ देर ध्यान लगाये रखने के बाद नेत्र खोलकर कहा—'जरा पीछे फिर कर तो देखिये।' कैप्टिन ने पीछे फिर कर देखा तो उन्हें वह कलाकृति दीवाल पर टँगी दिखाई दी जो वहाँ से हजारों मील दूर पेरिस में स्थित उनके घर में टँगी थी।

वह कलाकृति बहुत मूल्यवान थी। कैप्टिन डुबो के पिता पियरे ने जब अपने घर से उन कृति को गायब देखा तो पेरिस की पुलिस में रिपोर्ट की उनके घर से दस लाख मूल्य वाली कलाकृति चुराली गई।

है। तब उसकी खोज में खुफिया पुलिस लगाई गई, जो कई दिनों तक खोजने पर भी असफल रही।

जब पियरे ने अपने पुत्र डॉ० डुबो को उस कलाकृति की चोरी की सूचना दी, तब उन्हें पता लगा कि उनके घर से ही उड़ाई गई थी। उस घटना पर सभी आश्चर्य चकित रह गये।

परन्तु, यह घटना चाहे सूक्ष्म शरीर से अधिक सम्बन्ध न रखती हो किन्तु प्राण-ऊर्जा के चमत्कार से सम्बन्धित तो है ही। सूक्ष्म शरीर बन घटनाओं में भी सहायक होता है। क्योंकि स्थूल शरीर के द्वारा किसी अद्भुत कार्य का किया जाना कठिन ही है।

इसी प्रकार की एक घटना बम्बई से एक सिद्ध पुरुष के विषय में भी सुनी गई जो चाहे जिसकी तिजोरियों से नोट, जेबर आदि उड़वा कर मँगवा लेते और लोगों को दिखाकर आश्चर्य चकित कर देते थे। बाद में वस्तुएं वहाँ से गायब करके यथा स्थान पहुँचा दी जाती थीं। वे सिद्ध शेर भी पालते थे

एक बार कर्नल टाउन सेंड ने वैज्ञानिकों और साहित्यकारों केसमक्ष एक अद्भुत प्रदर्शन किया। उस समय ब्लैक बोर्ड के साथ चॉक बाँध दी गई और कर्नल स्वयं एक स्थान पर जा बैठे। फिर उन्होंने अपने शरीर से प्राण को बाहर निकाला और बोले हुए सवाल ब्लैक बोर्ड पर लिखकर उनको हल किया। बीच-बीच में वे अपने शरीर में आ-आकर सवालों के विषय में समझाते रहे। इस प्रदर्शन ने सभी को आश्चर्य चकित कर दिया था।

वस्तुतः यह घटना सूक्ष्म शरीर के क्रिया-कलापों से सम्बन्धित है। इस प्रकार की बहुत सी घटनाएं घटित होती रहती है, किन्तु उनकी जानकारी सभी को नहीं हो पाती। डॉ० मौस ने ऐसी अनेक घटनाओं

का उल्लेख किया है। एक घटना उस समय की है जब ब्रिटिश कोलम्बिया विधान सभा का अधिवेशन चल रहा था। उसमें एक विधायक चार्ल्स बुड उपस्थित नहीं हो सकते थे। क्योंकि वह इतने बीमार थे कि उनके बचने की आशा नहीं थी।

चार्ल्सबुड अधिवेशन में भाग लेने के लिये बहुत उत्सुक थे, किन्तु चिकित्सक उन्हें विस्तर से उठने भी न देते थे। परन्तु विधान सभा में उन्हें उपस्थित देखा गया तथा सभा की समाप्ति पर जो फोटो लिया गया उसमें भी वे अन्य सदस्यों के साथ उपस्थित दिखाई दे रहे थे।

इसी प्रकार की एक अन्य घटना की चर्चा करते हुए डा० मौस ने ही कहा है कि ब्रिटेन के हाउस आफ लार्ड्स के अधिवेशन में सत्तारूढ़ दल के एक सदस्य सर कार्नराश अत्यधिक बीमार होने के कारण उपस्थित होने में असमर्थ थे। उस समय सरकार को बचाने के लिए एक एक मत का भारी महत्व था। डाक्टरों ने सर कार्नराश को उत्कट इच्छा होते हुए भी सदन में जाने की अनुमति नहीं दी। किन्तु अनेक सदस्यों ने उन्हें मतदान में भाग लेते हुए प्रत्यक्ष देखा, जब कि डाक्टरों ने कहा कि वे अपने बिस्तर पर ही थे। एक सैकण्ड को भी नहीं हिल पाये।

पृथिवी में अनेकानेक रत्न, बहुमूल्य खनिज पदार्थ तथा स्वर्णादि धातुओं का भण्डार दबा हुआ है। विज्ञान ने उनका पता लगाने के लिये उपयोगी यन्त्रों का आविष्कार किया है, जिनके द्वारा भूगर्भ में छिपी वस्तुओं का ज्ञान किया जा सकता है। किन्तु कुछ लोग अपने आन्तरिक ज्ञान के आधार पर ही यह सब बताने में समर्थ हैं। इस विषय में प्रो० वेनेट के बारे में बताया जाता है कि उन्होंने आयरलेंड के एक ऐसे पहाड़ी क्षेत्र का अन्वेषण किया, जहाँ दूर-दूर तक पानी का कहीं कोई चिन्ह ही नहीं था। उस समय उस भूमिका निरीक्षण करते हुए प्रो०

वेनेट ने एक स्थान पर सहसा रुककर खदान विशेषज्ञों को बताया कि यहाँ केवल पन्द्रह फुट नीचे ही पानी का एक अच्छा'स्त्रोत विद्यमान है। उनके बताये हुए स्थान पर खुदाई आरम्भ की गई तो पन्द्रह फुट नीचे ही जलधारा निकल आई।

प्रो० वेनेट ने किसी यन्त्र का सहारा नहीं लिया था। वह उनकी अन्तः चेतना की ही शक्ति थी, जिसके प्रभाव से वे भूगर्भ में छिपे जल स्त्रोतों और खानों का पता लगा लेते थे। हमारे देश में भी कुछ लोग सुने जाते हैं, जिनमें ऐसी क्षमता विद्यमान है। राजस्थान में ही माधवानन्द नामक एक महात्मा पानी वाले महाराज के नाम से प्रसिद्ध थे, जिन्होंने अपनी आन्तरिक दृष्टि के बल पर पानी के स्त्रोतों का पता लगाया और कुएँ बनाने की प्रेरणा दी।

अँगुलियों में दर्शन-शक्ति

यद्यपि नेत्रहीन मनुष्यों में अनुभव शक्ति बढ़ जाती है और वे बहुत सा ऐसा कार्य बिना नेत्र के ही कर लेते है, जिन्हें नेत्र वालों के लिये अँधेरे में करना सम्भव नहीं होता। किन्तु कुछ मनुष्यों की क्षमता उन नेत्रहीनों की उपेक्षा भी अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है, जिसे देखकर आश्चर्य चकित रह जाना होता है।

ऐसे ही एक तथ्य की जानकारी तब हुई, जब मास्को के टेलीविजन केन्द्र ने एक बाईस वर्षीय युवती रोसा कुलेशोवा का कार्यक्रम प्रसारित किया। यह युवती अपने दाँये हाथ की दो अँगुलियों के स्पर्श मात्र से समाचार पत्र एक लेख पढ़ने लगी और फिर उससे बिना किसी की सहायता के ही फोटो चित्रों को पहिचान कर बताया। यह युवती निजनी के एक अन्ध विद्यालय में अध्यापक है।

एक दिन अध्यापन काल में उसे सहसा यह अनुभव हुआ कि वह नेत्रों की सहायता के बिना ही, अँगुलियों के पोरों की सहायता से ही देखने में समर्थ है। अब उसने स्पर्श के द्वारा ही अक्षर पहिचानने का अभ्यास बढ़ाया और उसके बाद स्पर्श से ही कागज पर छपे रंगों को भी पहिचानने में सफल रही। वह अँगुलियों की सहायता से समाचार पढ़ने और उनमें छपे के विषय में पूरी बात बताने लगी। उससे पूछा गया कि वह स्पर्श मात्र से ही अक्षरों, चित्रों एवं रंगों की पहिचान कैसे कर लेती है ? इसके उत्तर में वह इतना ही बता सकी कि जब वह किसी वस्तु का स्पर्श करती है तब उसके मस्तिष्क में कुछ तरङ्ग-पंक्तियाँ दौड़ना आरम्भ करती हैं और तब सम्बन्धित दृश्य स्पष्ट होने लगता हैं।

वैज्ञानिकों ने तथ्यों का पता लगाने के लिये उस पर कुछ प्रयोग भी किये। उनका विचार हुआ कि किसी प्रकार इन्फ्रारेड किरणों के निकलने से ऐसा हो सकता है। उन्होंने इन्फ्रारेड किरणों की सभी सम्भावनाओं को रोकने का प्रयास किया, किन्तु रोसा को पूर्ववत् ज्ञान होता ही रहा। यह देखकर सभी वैज्ञानिक विस्मय में थे।

टेलिविजन पर प्रसारित उस कार्यक्रम से प्रेरणा लेकर खार्कोव के डाक्टर ओल्गा ब्लिजनोव ने भी अपनी पुत्री पर इसी प्रकार का प्रयोग कर देखा कि वह भी स्पर्श से ही रंगों को पहिचान लेती है। तब एक कागज पर कुछ लिखकर उसे कागजों के एक बन्डल के नीचे दबा दिया और उससे पूछा कि उसमें क्या लिखा है ? लेना ब्लिजनोव ने उस कागज में लिखी बात यथावत बता दी।

इस प्रकार की चर्चाएँ अमेरिका में भी चली। न्यूयार्क के बारनार्ड विद्यालय के प्रोफेसर यूज का कहना था कि पेट्रीशिया आइन्सवर्स नामक

एक लड़की भी इसी प्रकार की अन्तदृष्टि से सम्पन्न है। वह लड़की जब कई बालकों की माता बन गई तो प्रोफेसर यूज ने १३५ लड़कों पर परीक्षण किये। निष्कर्ष रूप में उन्हें पन्द्रह प्रतिशत छात्रों में ऐसी क्षमता मिली, जो यदि अभ्यास करे तो इस प्रकार की दृष्टि बढ़ाने में समर्थ हो सकते हैं।

सूक्ष्म शरीर की रहस्यमय गतिविधियाँ

वस्तुः चर्मचक्षु केवल अपनी परिधि में आने वाले दृश्य को ही देख सकते हैं, उन दृश्यों को देखने में सक्षम नहीं जो दृष्टि से ओझल हों। किन्तु अन्तदृष्टि द्वारा वह सभी कुछ देखा जा सकता है जो चर्म-चक्षु वाली दृष्टि से न देखा जा सकता हो।

संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जिसमें ऊष्मा तथा प्रकाश की तरंगे विद्यमान न हों। वे किरणें अपने स्पन्दनों के द्वारा समस्त संसार में अपनी धारा प्रवाहित करती है। ईथर नामक तत्व उन प्रवाहों को सुदूर तक ले जा सकता है। यदि वे प्रवाह किसी प्रकार पकड़ में आ सकें तो सुदूरस्थ घटनाएं भी प्रत्यक्ष हो सकती हैं।

यदि मानव मस्तिष्क के कार्यों की ओर ध्यान दें तो पता चलेगा कि मस्तिष्क नेत्र गोलक के समक्ष उपस्थित होने वाले दृश्यों के चित्र ग्रहण

करता रहता है। दृश्य पदार्थों में जो किरणें रहती है, वे नेत्रों की पकड़ में तुरन्त आ जाती हैं। मस्तिष्क के दृश्य देखने वाले केन्द्र के साथ नेत्रों में विद्यमान ज्ञानतन्तु अपना सीधा सम्पर्क रखते हैं, इसीलिए रूप-दर्शन का कार्य नेत्रों के द्वारा सरलता से सम्पन्न होता रहता है।

इस पंचीकृत शरीर में जो अग्नि तत्व विद्यमान है, उसका प्रति निधित्व रूप-दर्शन के साधन रुप से नेत्र ही करते हैं। किन्तु अग्नि तत्व शरीर के अन्य भागों में भी विद्यमान है. यदि उस भाग में उसे किसी उपाय द्वारा विकसित कर लिया जाय तो वह नेत्रों के समान कार्य करने में समर्थ हो सकता है। उक्त घटनाओं में स्पर्श द्वारा अक्षर पढ़ने और रंगों को पहिचाननेवाला कार्य अँगुलियों के पोरों में अग्नि तत्व के अधिक विकसित होने के कारण ही सम्भव हुआ समझा जा सकता है।

योगियों के मत में मनुय की भौहों के मध्य भाग में आज्ञा चक्र को विद्यमानता है। इसे विद्वज्जन ज्ञान नेत्र, दिव्य नेत्र या तीसरा नेत्र कहते रहे हैं। यदि उस पर अभ्यास किया जाता रहे तो दिव्य दृष्टि की प्राप्ति सरल हो सकती है।

दिव्य दृष्टि के विषय में एक पाश्चात्य विद्वान् गेविन मैक्सवेल ने पर्याप्त अन्वेषण किया है। उनका निष्कर्ष है कि अनेक व्यक्तियों में वैसी दृष्टि सहज सम्भावनाएँ पाई जाती हैं। यदि वे उसे बढ़ाने के लिए निरन्तर अभ्यास करे तो शीघ्र सफल हो सकते हैं।

कुछ व्यक्तियों में सहज रूप से ही वैसी क्षमता रहती है, किन्तु वे उसे प्रकट नहीं करना चाहते। उन्हें आशंका रहती है कि कहीं कुछ कहने पर हँसी न उड़े, कहीं कोई सनकी या ढोंगी न मनने लगे। बस यही भय उन्हें अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने से रोके रहता है।

उक्त श्री मैक्सवेल ने एक ऐसे अन्धे वृद्ध की चर्चा की है, जिसकी आयु अस्सी वर्ष थी। एक बार शम्स फियारना द्वीप में मछली पकड़ने वाला एक मछुआ खाड़ी में डूब गया। उसके गांव के सभी लोग उसकी लाश निकालने के लिए व्यग्रता पूर्वक वहाँ के अधिकारियों से आग्रह करने लगे। लाश का पता लगाने के लिए कई नावें, कई दिनों तक खाढ़ी में खोजती रही, किन्तु पता न चला। तब उस अन्धे वृद्ध ने कहा—'यदि मुझे नाव में बैठाकर घुमाया जाय तो सम्भव है कि मैं कुछ सहायता कर सकूँ।

यद्यपि उसकी बात पर बहुतों को विश्वास न हुआ। विश्वास होता भी कैसे ? अस्सी वर्ष का वृद्ध, नेत्र हीन और अशक्त। फिर भी उसे नाव पर चढ़ाकर खाड़ी में घुमाया जाने लगा। सहसा एक स्थान पर वह बोला—'लाश बिल्कुल इसके नीचे है, कांटा डालो।' तुरन्त काँटा डाला गया तो लाश वहीं मिली।

आँखों पर पट्टी बाँधक दृश्य बताने के उदाहरण भी बहुत से मिलते हैं। अमेरिका की एक स्त्री पोर्टेशिया घोर अंधकार में या आँखों पर पट्टी बाँधकर दृश्यों को देखती और रंग आदि भी पहिचानती है। उसकी परीक्षा जिस समिति ने की उसके अध्यक्ष डॉ रिचर्ड यूटिस से परिणाम घोषित हुए कहा कि यह महिला अपने में जैसी क्षमता बताती है, वैसी उसमें पायी गई है।'

प्रोफेसर सरकार के विषय में बताते हैं कि वे आँखों पर पट्टी बाँधकर मोटर साइकिल पर चढ़कर भीड़ भारी सड़कों पर नि;शक हुए चलते थे, मजाल क्या कि किसी प्रकार की कोई गड़बड़ी हो जाय। इस प्रदर्शन को देखकर सभी दर्शक विस्मय में देखते रह जाते थे।

इसी प्रकार के और भी बहुत से उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है। शिवजी के चित्रों में हम उनके माथे पर तीसरा नेत्र देखते है उसका

अभिप्राय उनकी अन्तर्दृष्टि की क्षमता से ही है। इसे आज्ञाचक्र का प्रतीक मानने हुए यह कहा जाता है कि इसके विकास से दृश्य-अदृश्य सभी कुछ देखा जा सकता है। जो ज्ञान न जाना हुआ हो, उसे भी इसके द्वारा जान सकते हैं।

नेत्रों की शक्ति का अद्भुत प्रभाव मेस्मरेजिम या हिप्नो टिज्म के माध्यम से भी देखा जा सकता है। इस विद्या के जानकार जब अपने प्रयोगों का प्रदर्शन करते हैं। तब दर्शकों के समक्ष यही तथ्य उपस्थित होता है कि जो कार्य बाह्य चेतना द्वारा सम्भव नहीं, वे अन्त:चेतना के द्वारा सहज ही किये जा सकते हैं।

जीवन में ही सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से पृथक् रह सकता है, इस विषय में अनेक घटनाएँ प्रकाशमें आती रहती हैं। एक बार अमेरिका की एक प्रसिद्ध अभिनेत्री एलिजावेथ टेलर का ऑपरेशन हुआ। ऑपरेशन टेबिल पर लिटाकर मूच्छित किया गया। उस ऑपरेशन में पर्याप्त समय लगा, किन्तु ऑपरेशन पूर्ण होने पर डाक्टरों को लगा कि उसकी नाड़ी डूब रही है तथा हृदय का स्पन्दन भी मन्द होता जा रहा है। डॉक्टरों को चिन्ता हुई कि कहीं यह मर न जाय, इसलिए तत्परता से उपचार में लग गये। बहुत प्रयत्नों के बाद उसकी चेतना लोटी।

जब वह स्वस्थ हो गई तब उसने बताया कि 'मैंने अपना ऑपरेशन होता हुआ स्वयं देखा था। इस पर डाक्टरों ने पूछा कि 'आप तो मूच्छित थीं अपना ऑपरेशन स्वयं कैसे देख लिया ?' टेलर बोली—'मुझे उस समय अपने शरीर का प्रत्येक अंग सिर, चेहरा, नाक, कान आदि सभी कुछ उसी प्रकार दिखाई दे रहा था, जैसे कि किसी अन्य व्यक्ति का। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं शरीर से बाहर निकल कर सब कुछ देख रही हूँ। उस समय यह भी प्रतीत हुआ जैसे में बहुत हल्की हो गई हूँ।'

डॉक्टरों के पूछने पर उसने ऑपरेशन की क्रिया, उसमें कब कौन-से उपकरण काम में लाये गये तथा कौन-सा उपकरण यथा स्थान न मिलते पर मुख्य डॉक्टर कैसे झल्लाये आदि सभी कुछ जैसे हुआ था वैसे ही बता दिया।

ऐसी ही एक घटना प्रसिद्ध लेखक एवं कवि श्रीदाऊदयाल गुप्त ने सुनाई थी। उनकी आयु प्रायः पंद्रह-सोलह वर्ष की रही होगी जब वे हरिद्वार में थे। उन्हें फूलडोल सजाने का बहुत शौक था। भादों का ममहीना, कृष्ण जन्माष्टमी का दिन, अपने घर के आगे वाली छत पर उन्होंने बाँसों का एक हिडोला बनाया, उसे केला और फूलों से सजाया और गोपाल कृष्ण की धातु प्रतिमा उसमें विराजमान की। बिजली के बल्व प्रकाश के लिए लगाया, किन्तु प्रकाश कम देखकर पाँच सौ वॉट का बल्ब लगाने के लिए ज्यों ही होल्डर पर हाथ लगाया कि होल्डर हाथ पर चिपकी गया। एक दबी हुई चीख, विद्युत के झटकों का अनुभव और फिर मूर्च्छा। हल्की वर्षा होने लगी थी इसलिए विद्युत-प्रवाह भी फैलने लगा।

वह छत बाजार की दुकानों के ऊपर थी, इसलिए बहुत लोगों ने चीख सुनी। लोग दौड़ पड़े: एक व्यक्ति के सूझ-बूझ से काम लिया, मेनस्विच नीचे ही था, वह उसे बन्द करता आया। करेंट समाप्त हो गया, मूर्च्छा न टूटी। बहुत प्रयत्न के बाद कहीं होश आ सका।

मूर्च्छित अवस्था में उन्होंने अपने शरीर को छत पर पड़े हुए स्वयं देखा। धीरे-धीरे लोगों की भीड़ का बढ़ना, पिताजी का किंकर्त्तव्य रह जाना और माता का रोना आदि सब कुछ उन्होंने यथावत बताया। उनका कहना है कि वे उस समय अपने को एक पक्षी के रूप में अनुभव कर रहे थे।

आयरलैंड में एक बटलर-दम्पत्ति थे। स्वप्न में श्रीमती बटलर को एक ऐसा भवन दिखाई दिया, जो सुन्दर उद्यानों के मध्य था। वे उस भवन के भीतर गईं तो वह उन्हें बहुत अच्छा लगा। उसके बाद तो उन्हें प्रायः नित्य ही वह स्वप्ना दिखाई देने लगा, जिसमें वे भवन के भीतर-बाहर घूमती। इस प्रकार वह एक अनदेखा भवन उन्होंने अपने पति को स्वप्न की बात कई बार सुनाई, कि वे यही सोचकर रह जाते कि स्वप्न ही है।

फिर एक बार उन्हें लन्दन जाकर रहना था। आवास के लिये सुविधाजनक मकान अपेक्षित था। इसलिए मकान की खोज में इधर-उधर घूमने लगे। एक दिन श्रीमती बटलर एक मकान को देखकर सहसा ठिठकी और पति को बताया कि यह मकान मुझे स्वपन में प्रायः दिखाई देने वाले मकान जैसा ही है।'

पूछताछ से पता चला कि मकान बिकाऊ है। तब उन्होंने मकानों के एजेंट से उस मकान का सौदा करने की बात की। किन्तु एजेंट ने बताया कि, यह तो भुतहा मकान हैं. आप व्यर्थ इस झंझट में न पड़े। मैं अन्य अनेक अच्छे मकानों के विषय में बताता हूं।'

किन्तु श्रीमती बटलर का उसी मकान के प्रति अधिक आग्रह देख-कर एजेंट उन्हें मकान-मालिक के पास ले गया। किन्तु मकान-मालिक श्रीमती बटलर को देखते ही 'भूत-भूत' चिल्लाता हुआ भीतर भागा। तब एजेण्ट उन्हें बाहर ही छोड़कर अकेला भीतर गया और मकान-मालिक को भय से काँपते हुए समझाया कि यह लोग आपका मकान खरीदना चाहते हैं। भूत-बूत नहीं, मनुष्य हैं तथा अमुक सरकारी विभाग में कार्यरत हैं।

मकान मालिक का सान्त्वना मिली तब उसने बताया कि तुम जिस मकान की बात करते हो वह हमें अधिक पसन्द था तो भी हम

उसे छोड़ कर यहाँ आने को विवश हुए हैं। वहाँ रात्रि में एक स्त्री चाहे जब आती और मकान में घूमती रहती। सभी उससे भयभीत रहते और उसकी आहट सुनते ही मुख ढक लेते। मैं उसे बार-बार देखने के कारण पहिचान भी गया था।'

श्रीमती बटलर को लक्ष्य कर उसने बताया कि 'वह स्त्री और कोई नहीं, आप ही हो सकती है। आपमें भवावहता न देखकर मैंने चाहा कि आपसे बातें करू, किन्तु आप पर मेरी बात का कोई प्रभाव न हुआ, मानों आपने कुछ सुना ही नहीं, तो मैं परेशान और व्यग्र हो उठा। फिर आपके बार-बार आते रहने से खतरे की आशङ्का से हम उस मकान को छोड़कर यहाँ रहने लगे।'

उसकी बात सुनकर श्रीमती बटलर भी विस्मय में पड़ गई और बोली कि 'जो कुछ आप कहते हैं, वह सब मैं स्वप्न देखती थी किन्तु इसका अभिप्राय मेरी समझ में नहीं आता था।'

अब मकान मालिक की समझ में यह आया कि इस स्त्री का उस मकान से किसी प्रकार का आंतरिक लगाव है, इसलिए उसने वह मकान पर्याप्त कम मूल्य में उन्हें दे दिया।

उक्त घटना से यह धारणा बनती है कि स्थूल शरीर के द्वारा किए जाने वाले कार्य सीमित हैं, जबकि सूक्ष्म शरीर की गतिविधियाँ असीमित हो सकतीं हैं। उसके द्वारा अनजाने ही अनेक कार्य रहस्य पूर्ण ढँग से होते रहते हैं। उसके साथ अचेतन मन का योग रहता है। बहुत बार स्वप्न में हम ऐसे स्थानों को देखते हैं जो हमने कभी देखे ही न हों। उसके विपरीत कभी-कभी कोई नवीन स्थान हमें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे पहिले से पहिचाना हुआ हो।

सन् १८६३ की एक घटना है—समुद्री जहाज में विलमोट और टेट नामक दो अमरीकी नागरिक यात्रा कर रहे थे। रात्रि के समय अन्ध

महासागर पार करते हुए तीव्र तूफान आ गया। उस समय बिलमोट सो रहा था और टेट जागा हुआ बैठा था।

जहाज का दरवाजा बन्द था, तो भी द्वार पर एक स्त्री गाउन पहिने हुए आती दिखाई दी। वह स्त्री सङ्कोच और लज्जा के कारण पहले तो कुछ हिचकी, फिर धीरे-धीरे बिल्मोट की ओर बढ़ी। टेट उसे श्चर्य देख रहा था।

स्त्री ने विलमोट का माथा सहलाते हुए उससे कुछ कहा, जो टेट के सुनने में ठीक प्रकार से नहीं आया। उसके पश्चात् वह पुनः लौटी और द्वार पाप जाकर गायब हो गई।

टेट ने देखा कि द्वार अभी भी बन्द है। तभी विलमोट ने हड़बड़ा कर आँखें खोली और उठ बैठा। टेट बोला—'तुम्हारे सोते हुए एक स्त्री ने आकर तुम्हारा माया सहलाया और चली गई।' बिलमोट ने कहा—मैंने भी इसी प्रकार का स्वप्न देखा है। वह स्त्री मेरी पत्नी थी।

अब विलमोट को चिन्ता हुई कि कहीं मेरी पत्नी बीमार तो नहीं हो गई। वह घर पहुँचा तो स्त्री को सामान्यतः स्वस्थ अवस्था में पाया। अवसर देखकर उससे स्वप्न की बात बताई और टेट द्वारा देखे गए दृश्य की भी चर्चा की। उसे सुन कर स्त्री ने बताया कि 'उस रात मैंने रेडियो पर सुना कि अटलांटिक में तूफान आ गया है उस खबर से मैं व्यग्र हो उठी और तुम्हारे विषय में सोचते सोचते ही मुझे नींद आ गई। फिर स्वप्न में मुझे लगा कि मैं एक समुद्री जहाजा में जा पहुँचीं, वहाँ तुम सो रहे हो और एक व्यक्ति जाग रहा है। मैं उसे देख कर कुछ झिझकी और फिर तुम्हारे पास जाकर तुम्हारा माथा सहलाते हुए पूछा कि किसी प्रकार की परेशानी तो नही है? बस, फिर मेरी नींद खुल गई।

इस प्रकार बिल्मोर और उसकी पत्नी द्वारा देखे हुए स्वप्न तथा टेट द्वार देखे हुए दृश्य की समानता इस रहस्य से पर्दा उठाती है कि वह सब बिल्मोर की पत्नी के सूक्ष्म शरीर का ही कार्य था। उसका स्थूल शरीर अमेरिका में निद्रावस्था में पड़ा रहा और सूक्ष्म शरीर अटलाण्टिक में चलते हुए जहाज में जा पहुँचा।

बहुत से व्यक्ति इस प्रकार की घटनाओं को आकस्मिक संयोग मान बैठते हैं तो कुछ उसमें आँशिक असत्यता का अनुभव करते है। उनके विचार में यदि यह घटनाएँ कुछ सत्य भी हों तो उन्हें बढ़ा-चढ़ा कर कही हुई मानते हैं। वस्तुत: उन्हें शरीर में विद्यमान आन्तरिक शक्तियों का ज्ञान नहीं होता, जो कि कुछ जाग्रत् और कुछ सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। मनोबिज्ञान के पण्डित इस तथ्य को मानते हैं कि अचेतन मन में बड़ी क्षमता है। उसके द्वारा बहुत से ऐसे रहस्यों का पर्दा खुल सकता है, जो मनुष्य के लिए सदैव अनजाने बने रहते है। अचेतन मन और सूक्ष्म शरीर का संयोग अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं का कारण वन जाता है।

मन की गति के विषय में तो सभी जानते हैं कि वह इच्छा मात्र से लाखों किलोमीटर स्थित गन्तव्य स्थान षर पहुँच सकता हैं। बुडलैण्ठ अमेरिका की ऐसी एक घटना है, जिसके अनुसार डॉ० जियोवर्नहाट को मनोगति से अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने का अनुभय हुआ। उन्होंने एक पत्रिका में लिखा था—

सन् ११७१ की बात है मेरापुत्र वियततामके मोर्चे पर था एक दिन मुझे अनुभव हुआ कि मेरा पुत्र खतरे में पड़ा हुआ मुझे पुकार रहा है। तभी मुझे प्रतीत हुआ जैसे मैं वायु से भी अधिक हल्का होकर उड़ रहा हूँ और फिर तुरन्त उस स्थान पर जा पहुँचा हूं, जो बुडलैण्ड से हजारों मील दूर है।

इस प्रकार बिल्मोर और उसकी पत्नी द्वारा देखे हुए स्वप्न तथा टेट द्वार देखे हुए दृश्य की समानता इस रहस्य से पर्दा उठाती है कि वह सब बिल्मोर की पत्नी के सूक्ष्म शरीर का ही कार्य था। उसका स्थूल शरीर अमेरिका में निद्रावस्था में पड़ा रहा और सूक्ष्म शरीर अटलाण्टिक में चलते हुए जहाज में जा पहुँचा।

बहुत से व्यक्ति इस प्रकार की घटनाओं को आकस्मिक संयोग मान बैठते हैं तो कुछ उसमें आंशिक असत्यता का अनुभव करते है। उनके विचार में यदि यह घटनाएँ कुछ सत्य भी हों तो उन्हें बढ़ा-चढ़ा कर कही हुई मानते हैं। वस्तुतः उन्हें शरीर में विद्यमान आन्तरिक शक्तियों का ज्ञान नहीं होता, जो कि कुछ जाग्रत् और कुछ सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। मनोबिज्ञान के पण्डित इस तथ्य को मानते हैं कि अचेतन मन में बड़ी क्षमता है। उसके द्वारा बहुत से ऐसे रहस्यों का पर्दा खुल सकता है, जो मनुष्य के लिए सदैव अनजाने बने रहते है। अचेतन मन और सूक्ष्म शरीर का संयोग अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं का कारण वन जाता है।

मन की गति के विषय में तो सभी जानते हैं कि वह इच्छा मात्र से लाखों किलोमीटर स्थित गन्तब्य स्थान षर पहुँच सकता हैं। बुडलैण्ठ अमेरिका की ऐसी एक घटना है, जिसके अनुसार डॉ॰ जियोवर्नहाट को मनोगति से अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने का अनुभय हुआ। उन्होंने एक पत्रिका में लिखा था—

सन् ११७१ की बात है मेरापुत्र वियततामके मोर्चे पर था एक दिन मुझे अनुभव हुआ कि मेरा पुत्र खतरे में पड़ा हुआ मुझे पुकार रहा है। तभी मुझे प्रतीत हुआ जैसे मैं वायु से भी अधिक हल्का होकर उड़ रहा हूँ और फिर तुरन्त उस स्थान पर जा पहुँचा हूँ, जो बुडलैण्ड से हजारों मील दूर है।

वहाँ चारों ओर आग लगी थी, मेरा पुत्र एक लोहे के भारी ट्रङ्क से दबा हुआ फंसा है एक तम्बू में। मैं उस ट्रङ्क को हटाता हूँ और लड़के को तम्बू से बाहर निकाल ले जाता हूँ। उसके पश्चात् मुझे लगा कि मेरा शरीर पहिले जैसा ही भारी हो गया। आँख खुल गई, देखा कि मेरी पत्नी नब्ज पर हाथ रखे निकट बैठी है। मेरे पूछने पर उसने बताया कि 'मुझे आपकी तबियत कुछ खराब लगी थी।' मैंने उससे अपने अनुभव की बात कहीं तो उसने कहा कि 'हो सकता है आपने कोई खराब स्वप्न देखा हो।'

यद्यपि मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ, किन्तु चुप रहने के अतिरिक्त करता भी क्या ? छः महीने बीतने पर मेरा पुत्र घर आया तो उसने आग लगने और अपने ट्रङ्क के नीचे फँसने तथा चमत्कारिक रूप से कँम्प से बाहर निकलने की घटना का वर्णन उसी प्रकार सुनाया, जैसा अनुभव वर्नहाट ने किया था। इससे उन्हें यह विश्वास हुआ कि मनोबोध से उन्हें उक्त घटना की सूचना मिली और उनके सूक्ष्म शरीर ने मनोगति से वहाँ पहुँचकर उसे बचाया।

वर्नहाट की ऐसी मान्यता निराधार नहीं हो सकती। सूक्ष्म शरीर जिन कार्यों को कर सकता है, उन्हें करने में स्थूल शरीर समर्थ नहीं होता। सूक्ष्म शरीर द्वारा होने वाली अनेक विस्मयकारी घटनाएँ समय-समय पर समाचार पत्रों में छपतीं और प्रकाश में आती रहती हैं। जो लोग शङ्कालु स्वभाव के होते हैं, वे अनेक घटनाओं को सुनकर भी उन में सन्देह व्यक्त करते हैं। किन्तु जब बहुत से तथ्य पूर्ण प्रमाण जुट जाएँ तब सन्देह की गुञ्जाइश प्रायः समाप्त हो जाती है।

प्राण शरीर में ही नहीं, शरीर के बाहर भी तरङ्गित रहता हैं। उसकी तरङ्गें मनुष्य के चारों ओर पाई जाती हैं। रूस के एक वैज्ञा-

निक ऐमयोन किलियान ने जो एलेक्ट्रोनिक में विशेषज्ञ माने जाते हैं, एक ऐसे फंटोग्राफिक यन्त्र का आबिष्कार किया है जो मनुष्य शरीर के निकटस्थ बाह्य क्षेत्र में रहने वाली विद्युत् किरणों का छायाङ्कन कर लेता है। उक्त यन्त्र के द्वारा प्राण विद्युत् के अनेक रहस्यों की जानकारी मिली है, जिससे सिद्ध होता है कि प्राण सत्ता बहुत प्रभावशाली है, जिसका प्रभाव शरीर के बाहर भी पर्याप्त रूप में रहता है।

प्राण तत्व की शक्ति तरङ्गों के बिषय में विभिन्न देशों में अन्वेषण कार्य चल रहा है। इङ्गलैण्ड में रोगियों की परीक्षा करते हुए डॉ० किलनर ने एक ऐसे मरणासन्न रोगी को देखा जो अद्भुत प्रकाश कणों से युक्त था। किलनर ने पाया कि उनके माइक्रोस्कोप के लेंस पर कुछ अद्भुत् प्रकार के प्रकाश कण जम गए हैं। उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार के कण पहिले तो कभी देखे नहीं थे।

उन्होंने दूसरे दिन पुनः उस रोगी की जाँच की। कल जो प्रकाश कण जमे हुए दिखाई दिए, आज वैसे ही कण माइक्रोस्कोप के लेंस के आगे उड़ते हुए देखे जा रहे और इन कणों का प्रकाश रोगी के शरीर के चारों ओर प्रायः आधे फिट की परिधि में विस्तृत है। उस प्रकशपुञ्ज के मन्द पड़ जाने पर रोगी की नाड़ी शिथिल हो गई और ज्यों ही वह पुञ्ज गायब हुआ त्योंही उसकी मृत्यु गई हो।

उक्त घटना से किलनर यह विश्बास करने को बिवश हुए कि जो पदार्थ जीवन के मौलिक गुणों से युक्त हो उसमें अवश्य ही अति सूक्ष्म सत्ता विद्यमान रहती हैं और उस सत्ता का विनाश कभी नहीं होता।

वस्तुतः वे प्रकाश के उड़ते हुए कण प्राणांश ही हो सकते है । जब तक प्राण की तीव्रता रही रोगी की स्थिति ठीक बनी रही और नाड़ी भी अपनो ठीक चाल पर चलती रही, ज्यों ही प्रकाश कणों में कमी हुई नाड़ी मन्द हो गई और प्रकार कणों के लुप्त होते ही जीवन का खेल समाप्त हो गया। इससे स्पष्ट है कि प्राणी को प्राण ही प्राणवान रखता है।

उक्त घटना से यह तथ्य सामने आता है कि पूर्ण विकसित प्राण ही जीवन है। मनुष्य शरीर को प्राण की उतनी ऊर्जा अपेक्षित है जितनी से शरीर अपेक्षित रूप में गतिवान और स्वस्थ रह सके । यदि ऊर्जा की कमी रहती है तो शरीर दुर्वल तथा अस्वस्थ हो जाता है।

वस्तुतः प्राण तत्व में चेतन भाव का विकास और सङ्कोचन क्रम के द्वारा ही चेतन या अचेतन बुद्धि व्यक्त करता हैं । विकसित चेतन प्राण ही आत्मा है, वही ब्रह्म है। इसके विपरीत, जो संकुचित प्राण रहता है उसे प्राण का अभास मात्र अथवा अंश मात्र समझा जाना चाहिए। कुछ लोग उस प्रकार के अविकसित प्राण को चेतन नहीं मानते। क्योंकि जो आभास मात्र है उसमें चेतना का अभाव हो जाता है।

प्राण आत्मा का वाहन और सहायक है

प्राण शक्ति जब सृजनात्मक रूप धारण करती है तब उसकी चेतना में सङ्कोचन उत्पन्न हो जाता है और जब उस पर उस प्रकार का दबाव पड़ता है, तब वही शक्ति क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल होने लगती है। उसका अन्तिम परिणाम जड़ता के रूप में प्रत्यक्ष होता है। तब उसमें उसी के अनुरूप तथा उतनी ही मात्रा में आत्मा के चेतन प्रकाश का प्रत्याभास होने लगता है। इसे सम्मिलित या यौगिक स्थिति (इन्वोल्यूशन) कह सकते हैं। इसमें सभी कुछ स्थूल में उलझ जाता है तथा स्थूलता के आवरण में उसका प्रकाश गुण छिप जाता है।

परन्तु जब स्थूल तत्त्वों से सूक्ष्म तत्वों का क्रमशः विकास होता है तव चेतन सत्ता भी विकासोन्मुखी होने लगती हैं और उस स्थिति में आत्मा का आनन्द गुण कुछ विकसित होता है तथा उसी अनुपात में चेतन प्रकाश का भी प्रत्याभास होता है। उसी कारण चेतन सृष्टि की अभिव्यक्ति (एवोल्यूशन) होंती है। सृष्टि के जड़-चेतन स्वरूपों में यही नियम कार्य करते हैं।

परन्तु आत्मा सदा शुद्ध, बुद्ध मुक्त, असङ्ग, अव्यय, विभु एवं नित्य है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन कभी नहीं हो सकता। उसके प्रकाश के प्रत्याभास को कोई भी चेतन-अचेतन अंश विकृत नहीं कर सकता। चिदाभास का कोई परिणाम नहीं हैं, इसीलिए उसे अपरिणामी कहते है। उसका अत्यन्त सूक्ष्म परिणाम हो सकता है

तो एक महत्तत्त्व, जिसे हिरण्यगर्भ या विराट् का प्राण अथवा बुद्धि कहते हैं। उस पर आत्मा का प्रकाश प्रत्योभासित होने पर उसकी समष्टि अहङ्कार संज्ञा होती है।

वही महत्तत्त्व जब देश, काल, ज्ञान, रोग और नियति के सम्पर्क में आता हैं तब जीबात्मिक बुद्धि का उदय होता है। यह बुद्धि तभी उदित होती है जब देश-कालादि के संयोग से महत्तत्त्व में आणविक व्यक्तित्व तथा अनेकता दिखाई देती है।

उसी महत्तत्व पर आत्मा का प्रकाश प्रत्याभासित होने पर अहङ्कार होता है तथा जब उसके चेतनांश पर आत्मा का प्रकाश प्रत्याभासित होता है, तब उसी को चित्त कहते हैं।

उसी से मन होता है। मन में सङ्कल्प-रूप जो शक्ति है वह भी प्राण की ही है। उससे निचले प्राण विकार इन्द्रियाँ हैं, जिनमें चेतनांश अत्यधिक संकुचित हो गया, दब गया है। इस कारण आत्मा का प्रत्याभास भी उसी परिमाण में होता है।

शरीर पञ्चभूतात्मक है। इसमें पृथिवीं, आकाश, अग्नि, वायु और जल का पञ्चीकरण हुआ है, इसलिए पञ्चीकृत है। यद्यपि पञ्चभूतों की उत्पत्ति भी प्राण से ही हुई है, तथापि उनमें प्राण के सूक्ष्मांशों का इतने अधिक परिमाण में स्थूली करण हुआ है कि, चेतनांश का अभाव सा ही प्रतीत होता है।

जीव सृष्टि चार प्रकार की है—(१) उद्‌जि, (२) स्वेदज, (३) अण्डज, और (४) जरायुज। इनमें मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के विकास की समानता नहीं होती। इसलिए समझना चाहिए कि उनका जितने अधिक परिमाण में विकास होगा, आत्मा का प्रकाश भी उतना ही अधिक प्रत्याभासित होगा।

वस्तुतः बुद्धि तत्व की भी अपनी विशेषता है। यह जब सजीव सृष्टि के निर्तांणार्थ विकास की ओर उन्मुख होता है, तब मन एवं इन्द्रियाँ भी विकासोन्मुख होने लगती हैं। इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि प्राण में चेतन शक्ति का विकास अथवा सङ्कोचन प्राण का ही परिणामी धर्म हो सकता है। आत्मा का परिणामी धर्म न होने के कारण ही आत्मा को अपरिणामी कहते हैं।

यही कारण है कि स्थूल शरीर नष्ट हो जाता है तो भी आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता। आत्मा ही क्या, विनाश तो किसी भी सूक्ष्म तत्व का नहीं होता। एक शरीर छोड़ने पर वे तत्व दूसरे शरीर में चले जाते हैं। हम देखते हैं कि बीज ही वृक्ष का कारण होता हैं, किन्तु बीज भी वृक्ष से ही उत्पन्न होता हैं। इन क्रियाओं में प्राण शक्ति का ही विकास और सङ्कोचन निहित है। जब मनुष्य जन्म लेता है तब उसमें प्राण शक्ति विकासोन्मुखी हो जाती है। शिशुकाल से युवावस्था पर्यन्त होने वाला शारीरिक विकास प्राण शक्ति के विकास पर ही निर्भर है।

युवावस्था से आगे बढ़ने पर शरीरस्थ कोषादि का ह्रास होने लगता है। उस समय प्राण शक्ति भी संकुचित होने लगती है, और क्रमशः उस का सङ्कोच इतना बढ़ जाता है कि अन्त में शरीर प्राण शक्ति के धारण में ही असमर्थ हो जाता है और देहधारी की मृत्यु हो जाती है।

शरीर के रहते हुए विभिन्न क्रिया कलाप चलते है। उस समय बुद्धि तत्व पर कृत कर्मों के फलस्वरुप अथवा परिवेश आदि कारणों से अनेक प्रकार के संस्कारों का अङ्कन होता रहता है। उन संस्कारों से क्रमशः संस्कारित होती हुई बुद्धि उत्तरोत्तर विकास की ओर बढ़ती रहती है। किन्तु यदि कृत-कर्म कुसंस्कार रूप होते हैं तो बुद्धि

बुद्धि के विकास या पतन के मुख्य साधन मेधा और मस्तिष्क हैं, जिनमें भौतिक क्रियाएं होने के कारण उनका उत्थान पतन भी उसी के अनुसार होता है। इन क्रियाओं का यद्यपि आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं होता तो भी उसे उनके फल स्वरूप भोग भोगने के लिए विवश होना होता है। एक शरीर से अन्य शरीर में पहुँचने में मुख्य कारण वे ही संस्कार या कुसंस्कार होते हैं। जन्म-जन्मान्तरों में फल भोग के आधार वही हैं।

परन्तु, कुसंस्कारों के क्षय और सुसंस्कारों के उदय के लिए यदि प्रयत्न किया जाय तो सफलता प्राप्त होनी असम्भव नहीं है। हमारे आचार्यों ने अध्यात्मक विद्या का,उपदेश इसी उद्देश्यसे किया है कि हम अपना आत्म विकास करके इस दु:ख रूप संसार-सागर से किसी प्रकार पार हो सकें।

एक बार कौसल देश के प्रसिद्ध ऋषि आश्वलायन ने महर्षि पिप्पलाद से प्राण के विषय में प्रश्न किया—'भगवन्! इस प्राण की उत्पत्ति किसके द्वारा हुई? शरीर में यह किस प्रकार प्रविष्ट होता तथा स्वयं को किस प्रकार विभाजित करके शरीरमें रहता है? किस प्रकार बाह्य संसार को तथा मन और इन्द्रियों को धारण करता है? फिर शरीर से किस प्रकार उत्क्रमण करता है?'

इसके उत्तर पिप्पलाद ने कहा—'यद्यपि तेरे प्रश्न बहुत जटिल है। तू वेदज्ञ है, फिर भी मैं तेरे प्रति कहता हूं। जैसे देहधारी के साथ छाया रहती है, वैसे ही परब्रह्म से उत्पन्न होने वाला यह प्राण उसी के अधीन है और वह मन के सङ्कल्प के अनुसार ही शरीर में प्रविष्ट होता है। आत्मा अपने सङ्कल्प के अनुसार ही प्राण युक्त होता है और सङ्कल्प के अनुसार ही योगियों को प्राप्त होता है।'

इस प्रसंग में मन की शुद्धि की ओर ही विशेष रूप से सङ्केत किया है। क्योंकि संकल्प-विकल्प मन के ही कार्य हैं।

प्रश्नोपनिषद् का मत है कि आदित्य ही बाह्य प्राण है, यदि चक्षु-सम्बन्धी प्राण पर अनुग्रह करता हुआ प्रकट होता है। अपान भूदेवता रूप है और यह मनुष्यों के अपान को स्थिर करता है। आकाश समान वायु है तथा व्यान भी आकाशस्थ वायु का ही एक बाह्य रुप है ? उदान ही तेज है। जिसके शरीर का तेज ठण्डा पड़ जाता है, उसकी इन्द्रियां मन के साथ विलीन हो जाती हैं और तब उसे अन्य शरीर की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उपनिषत्कार ने शरीरस्थ पांच प्राण की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध किया कि जब प्राण के पांचों अंश अपने-अपने स्थान पर विकसित अवस्था में रहते हैं तभी तक सम्बन्धित अंग भी विकासोन्मुख अथवा स्थिर रहते हैं, उसके बाद उनका विकास रुक जाता है और फिर स्थिरता भी समाप्त हो जाती है तथा पतनावस्था का आरम्भ होता है, जो वर्तमान शरीर की समाप्ति में कारण होती है।

जब शरीरान्त होता है तब आत्मा अपने संकल्प के अनुसार ही,उस संकल्प के सहित प्राण पर सवार होता है। फिर वह प्राण तेज से संपन्न होकर जीवात्मा को उसके संकल्प के अनुसार ही विभिन्न योनियों में पहुंचाता है।

इस प्रकार प्राण आत्मा का वाहन है। वही आत्मा को अपने पर चढ़ाता और चलने को तैयार होता है। उसे चलने के लिए उसी प्रकार तेज की अपेक्षा होती है, जैसे किसी इञ्जिन को चलने के लिए ईंधन की अपेक्षा हो।

प्राण से सम्बन्धित इस रहस्यको जानने वाला मनुष्य अपने उत्थान में समर्थ हो सकता है। यथा—

उत्पत्ति मायति स्थान विभुत्वं चैव पञ्चधा ।
अध्यात्म चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते ।।

अर्थात्—जो मनुष्य प्राण की सम्भूति, स्थिति और व्यापकता के विषय में (ठीक प्रकार से) जान लेता है और उसके पाँच भेदों को आध्यात्मिक रुप से समझ लेता है, उसे अवश्य ही अमृतत्व की अनुभूति होती हैं ।

इस प्रकार प्राण का अपना विशेष विज्ञान है । मुमुक्ष जनों को उसका ज्ञान बहुत आवश्यक है । क्योंकि उसे जान लेने पर मोक्षोपाय में सुगमता रहती है ।

तैत्तिरीय उपनिषद् में भृगु-बल्ली में भृगु ऋषि और उनके पिता वरुण का सम्वाद मिलता है । उसके अनुसार भृगु अपने पिता वरुण से ब्रह्मज्ञान देने का निवेदन करते हैं ।

वरुण बोले—'अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी सभी उस ब्रह्म की प्राप्ति के द्वार हैं । यह प्राणी जिस ब्रह्म से प्रकट होते, जिसके सहारे जीवित रहते और अन्त में इस लोक से चले जाते हैं तथा उसी मेंप्रविष्ठ हो जाते हैं. वही ब्रह्म है ।'

यह सुनकर भृगु तपस्या करने लगे तब सर्वप्रथम उन्हें यह ज्ञान हुआ कि 'अन्न ब्रह्म है । यथार्थ में यह सब देहधारी अन्न से उत्पन्न होते, अन्न से जीवित रहते तथा मरने पर अन्न में ही प्रविष्ट हो जाते हैं ।'

ऐसा ज्ञान होने पर वे पुनः अपने पिता के पास गए और उन्हें अपना अनुभव बताया । किन्तु वरुण उससे सहमत नहीं हुए और पुत्र के पूछने पर बोले —'तप के द्वारा ब्रह्म को जान, क्योंकि तप ही ब्रह्मस्वरुप है (ब्रह्म ज्ञान का साधन है) ।

भृगु ने पुनः तपस्या आरम्भ की । अब उन्हें ज्ञान हुआ कि 'prाण ही ब्रह्म है, क्योंकि समी प्राणी प्राण से उत्पन्न होते, प्राण से ही जीवित

रहते और अन्त में प्राणमें ही मिल जाते हैं। यह जानकर वे पुनः पिता के पहुँचे और अपने अनुभव की बात उनसे कही।

पिता ने असहमिति व्यक्त करके कहा—'तप से ब्रह्म को जान वही ब्रह्मज्ञान का साधन है।'

भृगु ने इस बार तपस्या करके जाना कि मन ही ब्रह्म है। क्योंकि सभी जीव मन से जन्म लेते उसीसे जीवित रहते और अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं।

उन्होंने पिता के पास जाकर अपना अनुभव सुनाया तो पिता ने पुनः असहमिति व्यक्त की। इस पर भृगु ने पुनः ब्रह्मज्ञान देने की प्रार्थना की तो उन्होंने वही बात कह दी—'तपस्या ही ब्रह्म है, ब्रह्म को तपस्या द्वारा ही जान।' यह सुनकर भृगु ने पुनः तपस्य आरम्भ की।

अब उन्हें यह ज्ञान हुआ कि 'विज्ञान ही ब्रह्म है, विज्ञान से ही सब प्राणी जन्म लेते, उसीसे जीवित रहते, मरते और फिर विज्ञान में ही जाकर मिल जाते हैं।'

वरुण इस बार भी सहमत न हुए। भृगु ने पुनः तपस्या की तो यह ज्ञान हुआ कि 'आनन्द ही ब्रह्म है, उसी से सब जीव उत्पन्न होते; उसीसे जीवित रहते, उसीसे मरते और अन्तमें उसी में लीन हो जाते है।' ऐसा निश्चय करके भृगु ब्रह्मज्ञानी हो गये। यह विद्या ब्रह्म में स्थिति कराने वाली कही है।

वस्तुतः अन्न ही इस अन्नमय कोष (स्थूल शरीर) का कारण है। अन्न के बिना जन्म, पालनादि कुछ भी नहीं हो सकता। अन्न से ही शरीर का पोषण होता है।

शरीर के पोषण में प्राण का मुख्य रूप से सहयोग है। प्राण ही खाये-पिये अन्न को पचाता और उसे रस-रक्तादि धातुओं के रूप में परिवर्तित करता है। रूप दर्शनार्थ नेत्रों और श्रवणार्थ श्रोत्रों की क्रिया भी

प्राण के सहारे ही होती है। वाणी भी तभी कुछ कहने में समर्थ होती है, जब प्राण सबल हों। प्राण की दुर्बलता होने पर मुख से बोला भी नहीं जाता।

मन प्राण के आश्रय में, उसके अधीन रहता है। मन की गति में प्राण ही मुख्य रुप से कारण है। प्राण आत्मा का भी वाहन और सहायक है। वह आत्मा द्वारा ही व्यक्त हुआ माना जाता है। उस आत्मा को विज्ञान रुप भी कहते हैं। आत्मा परमात्मा का अंशभूत भी है। उसमें सत्-चित् और आनन्द तीनों गुण विद्यमान तो रहते हैं, किन्तु उसका आनन्द गुण स्थूल शरीर के आवरण में छिप जाता है और प्रतीत होता है कि उसमें आनन्द गुण का अभाव है।

आनन्द गुण को उजागर करने के लिये सात्विक प्रवृत्ति तथा तप-साधना आदि की अपेक्षा होती है। बिना किसी प्रकार के साधन के सांसारिक माया-मोह में पड़े हुए जीव का उद्धार नहीं हो सकता यदि वह उन उपायों के द्वारा अपने आनन्द गुण का विकास करने में समर्थ हो जाता है तो ब्रह्मस्वरुप ही हो जाता है। उपनिषत्कारों ने आनन्द के ज्ञान को ही ब्रह्मज्ञान कहकर स्पष्ट कर दिया है कि हमें आनन्द की प्राप्ति का ही सतत् प्रयत्न करना चाहिये। आनन्द ही ब्रह्म स्वरुप है। मुमुक्षु जनों को ब्रह्म को जानने के लिए आनन्द को जानना चाहिये।

आनन्द का तात्पर्य ब्रह्म से ही है। आत्मा जब स्वयं को आनन्द से ओत-प्रोत करले, तब उसे और क्या चाहिये। किन्तु उस आनन्द की प्राप्ति प्राण-साधनासे ही हो सकती है क्योंकि प्राण की चेतना आनन्दात्मक ही है। जो आनन्द है, वही ब्रह्म है, वही आत्मा है और प्राणरुप से ही वही व्यक्त होता है। इस विषय में मुण्डकोपनिषद् का कथन है—

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो
यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेश ।
प्राणैश्चित सर्वमोतं प्रजानां
यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ।।

अर्थात्—जिस शरीर में पाँच प्रकार से प्राण विद्यमान हैं, उसी प्राण से सब शरीर धारियों का मन व्याप्त है । यह सूक्ष्म आत्मा मनके द्वारा जाना जाता है और उस मन के शुद्ध होने पर आत्मा सभी प्रकार से सबल हो जाता है ।

प्राण जब पाँच भागों में विभक्त हुआ शरीर में रहता है तब मन को भी अपने अधीन रखता है । स्पष्ट देखते हैं कि शरीर का कोई-सा भी अङ्ग पीड़ित या अस्वस्थ होने पर भी उसी में लगा रहता है। कहीं चोट लग जाय तो मन बार-बार उस चोट वाले स्थान पर ही दौड़ेगा । इस प्रकार मन को प्राण का अनुसरण करना ही होता है । यदि कभी प्राण संकट में पड़ जांय तो मन भी अनिष्ट की आशंका से खिन्न तथा व्यग्र हो जायगा । इसलिए मन की प्राण के अधीन मानते हुए भी यह संकेत कर दिया है कि आत्म-ज्ञान मन से ही हो सकता है यह तभीं सम्भव है जब प्राण दुर्बल न हों । यदि प्राण दुर्बल रहे तो शरीर अस्वस्थ रहेगा और मन का आत्मज्ञान के प्रयत्न में लगाना कठिन हो जायगा ।

इसी कारण मन को शुद्ध रखने का उपदेश दिया गया है । मन की शुद्ध अवस्था वह है जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारः ईर्ष्या, द्वेषादि न रहे । निष्काम भाव से स्वस्थ, शुद्ध हुआ मन जब सबल प्राण के साथ आत्मबोध के लिये तत्पर हो तो उसे निस्सन्देह सफलता मिल सकती है ।

तैत्तिरीय—उपनिषद् में आनन्द रूप आत्मा की प्राप्ति का उपाय बताते हुए अन्त में कहा हैं—

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः। य स एवं विद-स्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं प्राण-मयत्मानमुपसक्रामति। एतमानन्दमयाऽमानमुपसंक्रामति।

अर्थात्—मनुष्य में और सूर्य में जो निहित है, वह एक ही हैं। इस प्रकार जानने वाला मनुष्य जब इस लोक को त्याग कर जाता है, तब (प्रथम) अन्नमय आत्मा को प्राप्त होता हैं। तदुपरान्त प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और फिर आनन्दमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है।

क्रमशः आत्मा के अन्नमय आदि पाँच भेद हैं, जिन्हें ज्ञानीजनों ने कोश संज्ञा दी है। वस्तुतः यह पाँचों आत्मा के ही देह सम्बन्धी स्तर है। जब जीव इस शरीरसे बाहर जाता है तब सर्वप्रथम अन्नमय (स्थूल) शरीर का त्याग करता हुआ अन्त में आनन्दमय स्वरूप को प्राप्त करता है।

इसीलिए लौकोक्ति है—जैसा मन वैसी गति।' अपवित्र मन अधो-गति का और शुद्ध मन उच्च गति का कारण होता है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में प्राणविद्या का प्रसङ्ग है। प्रजापति ने दो प्रकार की सन्तान उत्पन्न की—देवता और असुर। देवताओं की संख्या कम और असुरों की अधिक रही। इसलिए देवताओं से असुर भारी रहते थे।

देवता और असुर पृथक्-पृथक् लोकों में रहते थे। दोनों ही पक्ष परस्पर में ईर्ष्या रखते थे और प्रतिस्पर्धा में अपने को अधिक सिद्धकरने के प्रयत्न में लगे रहते।

एकबार देवताओं ने असुरों पर आक्रमण करने का विचार किया। उन्होंने सोचा कि यज्ञ में उद्गीथ के आश्रय से उन पर आक्रमण किया जाय।

ऐसा निश्चय करके उन्होंने वाणी से उद्गीथ गान करने को कहा जब वाणी ने उद्गीथ गान किया तब देवताओं ने वाणी के शुभ वचनों को अपने लिए रखा, इससे असुर यह जान गये कि देवगण उद्गाता के द्वारा हम पर आक्रमण करना चाहते हैं। यह देखकर उन्होंने वाणी पर आक्रमण करके उसे पाप रूपी अस्त्र से बींध दिया। वस्तुत: वाणी द्वारा जो अनुचित या अशुभ वचन निकलते हैं, वही पाप हैं।

अब देवताओं ने घ्राण से उद्गाता बनने को कहा। तब घ्राण ने उद्गीथ गायन किया, उसमें घ्राणस्थ भोग का गायन इन्द्रिय रूपी देवताओं के लिए किया। तब उन देवताओं ने घ्राण द्वारा सूँघी जाने वाली श्रेष्ठ गन्ध को अपने लिये रखा। जब असुरों को यह बात विदित हुई तब उन्होंने घ्राण पर आक्रमण करके उसे पाप रूपी अस्त्र से बींध डाला। वस्तुत: घ्राण जिस दुर्गन्ध को सूँघती है, वही पाप है।

फिर इन्द्रिय रूपी देवताओं ने उद्गीथ गान की प्रार्थना चक्षु से की। चक्षु ने भी अपने में निहित भोग को ही गाया तथा शुभ देखने के गुण को अपने लिये रखा लिया। यह जानकर असुरों ने उसे भी पाप से बींध दिया। वस्तुत: चक्षु जिस असुन्दर वस्तु को देखते हैं, वही पाप है।

फिर उन देवताओं ने श्रोत्र से उद्गीथ गान के लिए कहा। तब श्रोत्र ने भी स्वयं में निहित भोग को ही गाया तथा कल्याणमय शब्दों के श्रवण को अपने लिए रखा। फिर असुरों ने आक्रमण करके उसे भी पाप से बींध दिया। वस्तुत: जो अनुचित बात सुनी जाती है, वही पाप है।

अब उन देवताओं ने मन से वैसी ही प्रार्थना की। मन से उद्गीथ गान के द्वारा अपने में निहित भोगों का गान किया तथा शुभ संकल्पों को अपने पास रखा। असुरों ने यह जानकर मन पर भी आक्रमण किया और उसे पाप से बींध दिया। मन जो अनुचित संकल्प करता, वही पाप है।

अब देवताओं ने प्राण से उद्गीथ गाम का निवेदन किया। उसने उनकी प्रार्थना पर उद्गीथ का गायन किया। असुरों को इसका पता चला तो उन्होंने प्राण को भी पाप से बींधने का प्रयत्न किया। किन्तु वे उसी प्रकार असफल और छिन्न-भिन्न हो गये, जैसे मिट्टी के ढेले पत्थरों पर गिरकर चूर-चूर हो जाते हैं।

तब देवताओं ने जाना कि जिसने हमारी रक्षा की वह प्राण मुख में विद्यमान है। वह अंगों का रस रूप होने से आंगिरस कहलाता है। वह इतना बलवान और सुदृढ़ है कि मृत्यु भी उससे दूर भागती है।

फिर उसी प्राण रूप देवता ने इन्द्रिय रूप देवताओं की पाप रूप मृत्यु का संहार किया और उन सभी को मृत्यु से छुड़ाया। वाणी अमृतत्व को प्राप्तकर अग्नि रूप हो गई, घ्राण वायु रूप, चक्षु आदित्य रूप, श्रोत्र दिशा रूप तथा मन चन्द्रमा रूप हो गया। तब प्राण ने अन्न का गुणगान किया। क्योंकि अन्न का भोजन प्राण के द्वारा ही किया जाता है।

अब इन्द्रियों से न रहा गया, उन्होंने प्राण से कहा कि अपने उपभोग से शेष रहे अन्न का भाग हमें भी दो। तब प्राण ने कहा कि अन्न का भाग प्राप्त करने के लिए तुम सब मुझ में प्रविष्ट हो जाओ। यह सुनकर इन्द्रियाँ प्राण में प्रविष्ट हो गयीं। इस प्रकार सब इन्द्रियों की तृप्ति प्राण के द्वारा भोजन ग्रहण किये जाने से ही होती है।

प्राण ही इन्द्रियों के पोषण में सहयोगी होता है। जब तक प्राण अंगों में विद्यमान रहता है, तब तक वे सब पुष्ट रहते हैं। यदि किसी अंग से प्राण निकल जाता है तो वह अंग वहीं सूख जाता है। यदि जैसा कि पक्षाघात होने पर देखते हैं।

उक्त प्रकार से प्राणविद्या का वर्णन पढ़ने-सुनने में अद्भुत और अट-पटा लगता है, किन्तु इसमें जो रहस्य निहित है, उस पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जायगा कि वाणी, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन यदि पाप कर्मों की ओर आकृष्ट रहते हैं तो उनके कारण अधोगति ही होती है। क्योंकि पाप सदैव अधोगति का कारण है।

यदि वाणी अशुभ शब्द (गाली, शाप, अप्रिय वचन) निकाले तो उससे अपना या किसी अन्य का भी हित-साधन नहीं हो सकता यही बात घ्राण के विषय में है—दुर्गन्धित पदार्थ मन और प्राण दोनों पर प्रभाव डालते है। अवध के अन्तिम नवाव के विषय में कहा जाता है कि फिरंगियों ने उसका मनोबल और प्राणबल घटाने के लिए उसके पास मल से भरे हुए टोकरे रखवा दिये थे।

नेत्रों पर बुरे दृश्यों का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। यदि कोई कामुकता पूर्ण दृश्य आता है तो मनुष्य की सुप्त कामवासना भी उसे देखकर जाग्रत् हो उठती है। यदि कोई किसी को मारता दिखाई देता है तो मन में भय और आशंका भर उठती है।

इसी प्रकार कान भी अशुभ या अश्लील शब्द को सुनते हैं तो मन को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। मन का तो स्वभाव ही भोगों की ओर आकर्षित हो जाना है। यदि वह पाप कर्म में लिप्त हो जाता है तो इन्द्रियों को विषयों में डुबाये रखता है।

बड़े-बड़े विचारक इसीलिए मन और इन्द्रियों के संयम की बात सदा कहते रहे हैं। महात्मा गांधी ने भी वाणी, चक्षु और श्रोत्र

को संयम में रखने के उद्देश्य से ही कहा था—'बुरा मत बोलो, बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो।' उनके यह तीन वाक्य वस्तुतः सभी के लिए सूत्र रूप या मन्त्र रूप हैं।

परन्तु मन और इन्द्रियों के किसी भी प्रकार के मोड़ लेने से प्राण को कोई सम्बन्ध नहीं। यदि प्राण सबल है तो इन्द्रियों के भोगों में पड़े रहने से दुर्बल हो सकता है, जिसके फलस्वरूप विभिन्न रोग लग सकते हैं और आयु कम हो सकती है। किन्तु जो लोग अपनी इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण रखने का प्रयास करते हैं, वे दुर्बल हुए प्राण को बलवान बनाने में सफल हो सकते हैं।

———

प्राण-प्रवाह का मूल स्रोत-सूर्य

उपनिषदों ने सूर्य को बाह्य प्राण कहा है—'आदित्यो ह वै बाह्यः प्राणः' इत्यादि। इस प्रकार अनेक भारतीय विद्वान् तो सहमत हैं ही, विदेशी विद्वान् भी प्राण को सूर्य का ही अंश स्वीकार करने लगे हैं। रूस के एक विशेषज्ञ डा० उशाकोब का कहना है कि जो ऑक्सीजन जीवन का आधार तत्व समझी जाती है, वह पृथिवी की अपनी थाती या रचना नहीं है, वरन् प्राणमय प्रवाह के रूप में सूर्य से निकलकर आती और पृथिवी के वातावरण एवं तत्वों के योग से ऑक्सीजन का रूप धारण कर लेती है। यदि सूर्य उस प्राण प्रवाह को कम कर दे या पृथिवी उसे प्राप्त करने में असमर्थ हो जाय तो उसके फलस्वरूप होने

वाली आक्सीजन की कमी से पृथिवी में प्राणियों का जीवन संकट में पड़ सकता है।

प्राण प्रवाह के आक्सीजन रूप में परिवर्तन की प्रक्रिया पृथिवी से बासठ मील ऊँचे पर आरम्भ होती है। यह बादलों के समान पर कहीं नहीं बरसती, वरन् पहिले सीधी उत्तरी ध्रुव पर और पीछे दक्षिणी ध्रुव पर पहुँचती हुई समस्त संसार के वातावरण में फैल जाती है। ध्रुव में जो रङ्ग-बिरङ्गा झिलमिलाहट सा दिखाई देता है, वह आक्सीजन की उपस्थिति को प्रमाणित करता है।

और भारतीय प्राणविद्या भी प्रकारान्तर से इस विचारधारा के अनुकूल ही है। उसका उद्‌देश्य ही यही है कि दोनों ध्रुवों के माध्यम से विश्व को प्राप्त होने वाली यह प्राणधारा अपेक्षित परिमाण में आकर्षित किया जाय, जिससे उसके प्रभाव द्वारा स्थूल चेतना को जाग्रत् कर उसे क्रमशः सूक्ष्म रूप में परिवर्तित किया जा सके।

ध्रुवों में रङ्ग-बिरङ्गी झिलमिलाहट वाली आभा की जो चर्चा रूस वैज्ञानिक ने की है, उसके सम्बन्ध में प्रसङ्गवश यह बताना उचित होगा कि वह आभा उत्तरी ध्रुव की अपेक्षा दक्षिणी ध्रुव में अत्यधिक होती है। इससे यह समझा जा सकता है कि प्राण प्रवाह उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव पर तीव्रता से पहुँचता है और वहाँ उसका वितरण केन्द्र होने के कारण आभा की भी अधिकता होती है।

दक्षिणी ध्रुव का उभार समुद्र तल से लगभग उन्नीस हजार फुट है। पुराणों में इसका वर्णन शिवलिंग नाम से हुआ है। इसका उभार स्त्री की जननेन्द्रिय मान सकते हैं। वह स्थान एक महान् कला केन्द्र के रूप में समझा जा सकता है, क्योंकि वहाँ से प्राण का प्रेम-प्रवाह आरम्भ होता है।

दक्षिण ध्रुव में एक ऐसा पक्षी पाया जाता है, जिसके स्वभाव में अत्यन्त कोमलता तथा मिठास रहती है। इस पक्षी को 'पेनगुइन' कहते हैं। यह उस प्राण-प्रवाह से अधिक प्रभावित रहने के कारण ही अधिक प्रेममय होता है। इसके व्यवहार में बड़ी सरसता देखी जाती है।

मानव मस्तिष्क से भी प्रेम की अमृतधारा बहती है सहस्रार को अमृतनभ माना जाता है, जहाँ से दिव्य अमृत की धाराएँ प्रवाहित होती हैं, जिसका आनन्द योगीजन सहज ही प्राप्त करते रहते हैं। वह दिव्य प्रवाह भी योनि गह्वर में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति की ओर प्रवाहित रहता है। किन्तु उस स्थान पर कुण्डलिनी शक्ति सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। इस कारण मनुष्य उस अमृत प्रवाह के लाभ से वंचित रह जाता है।

यदि कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर लिया जाय तो निश्चय ही उस अमृत प्रवाह का लाभ उठाया जा सकता है। कुण्डलिनी जागरण की क्रिया सुप्त प्राणशक्ति के जागरण की ही किया है। इसके अनेक उपाय योग ग्रन्थों में बताये गये हैं। उन उपायों में प्राण साधन का महत्व सबसे अधिक है।

कोई भी योग क्रिया प्राण साधन के बिना सम्पन्न नहीं हो पाती। अष्टांग योग में योगी को जिन अंगों का अभ्यास करना होता, उनमें प्राण-साधन बहुत आवश्यक होती है।

यद्यपि योग के आठों ही अंग अपना-अपना महत्व रखते हैं। प्रथम दो अंग यम, नियम हैं, जिनका उद्देश्य शरीर और मन की शुद्धि है। जब तक शरीर और मन अपवित्र अवस्था में रहते हैं तब तक कोई भी साधना ठीक प्रकार से नहीं हो पाती।

अष्टांग योग का तीसरा अंग आसन है। यद्यपि योगियों ने आसन के बहुत से प्रकारों का निर्देश किया है, किन्तु वे सभी मणुष्य की अपनी-अपनी शारीरिक और मानसिक स्थिति के अनुसार निश्चित किये गये

थे। आसन का अभिप्राय बैठने के अभ्यास से है। यदि ऐसा अभ्यास नहीं होता तो कुछ देर में ही मन ऊब जाता है और थकान भी आने लगती है।

यह आवश्यक नहीं कि साधना के लिए किसी विशेष आसन का ही अभ्यास किया जाय, वरन् जिस स्थिति में सुख पूर्वक बैठा जा सके, मन में ऊब या थकान का अनुभव न हो, उसी स्थिति में बैठने से आसन का अभिप्राय पूरा हो जाता है।

आसन के पश्चात् प्राणायाम का निर्देश है। प्राणायाम प्राण साधना का ही रूप है। इसके द्वारा साधक अपने प्राणों को इतना सशक्त और गतिवान बना सकता है कि वह उसका उपयोग चाहे जिस कार्य में चाहे जिस प्रकार कर सकता है। शेषावतार लक्ष्मण जी के विषय में कहा जाता है कि जब वे वनवास काल में भगवान श्रीराम के साथ थे, तब वहाँ की दैनिक स्थिति की सूचना अपने प्राणों के संचार द्वारा अपनी पत्नी उर्मिला को देते रहते थे। उन्हें यह कार्य उर्मिला के आग्रह वश करना होता था। उनसे प्राप्त हुई सूचना को उर्मिला चित्रांकित करके अपने पूरे परिवार में प्रसारित कर देती थी।

कोषीतकि ब्राह्मणोपनिषत् में प्रतर्दन और इन्द्र के संवाद की एक आख्यायिका मिलती है। राजकुमार प्रतर्दन अत्यन्त पुरुषार्थी और रण कुशल थे। इन्द्र की उनसे मित्रता थी। राजकुमार ने एक दिन स्वर्ग देखने की इच्छा से अपने पिता राजा दिवोदास से आज्ञा ली और स्वर्ग में जा पहुँचे। वहाँ देवराज इन्द्र ने उनका बहुत सत्कार किया और वर माँगने को भी कहा। प्रतर्दन बोले—'देवराज ! मेरे पास सभी कुछ है, मैं पूर्णकाम हूँ, इसलिए कुछ भी नहीं चाहिये मुझे।'

इन्द्र ने कहा—अपने लिए नहीं तो संसार के हितार्थ ही सही। क्योंकि संसार के हित-साधन से अधिक कोई भी शुभ कर्म नहीं हो

सकता। तुम लोक सेवा करते हुए ही परब्रह्म को प्राप्तकर लोगे। अतः मैं तुम्हें लोकहित के लिए प्राण विद्या का उपदेश करूँगा।'

प्रतर्दन के सहमत होने पर इन्द्र ने कहा—'प्राण ही ब्रह्म है। योगीजन अपनी साधनाओं के द्वारा प्राण को ही आत्म में धारण करते हैं और उसी प्राण से विश्वकल्याण में लगे रहते हैं।'

प्राण शक्ति असम्भव को भी सम्भव करके दिखा देती है, इसके उदाहरण उपनिषदों और पुराणों में भरे पड़े हैं। एक पुराण कथा है अनुसूइया की—उनके पति अत्रि कहीं बाहर गये थे, आश्रम में वे अकेली थीं, ऐसे ही अवसर ब्रह्मा, विष्णु और शिव साधुवेश में आ पहुँचे परीक्षा लेने। महर्षि अत्रि ने उस बात को अपने प्राणबल से जान लिया और प्राण-संचार द्वारा ही सूचित कर दिया कि अनुसूइया को 'त्रिदेव तुम्हारी परीक्षा के लिए आ रहे हैं, इन्हें रुष्ट न करना और अपनी मर्यादा भी रखना।'

अनुसूइया सम्भल गयी, उन्होंने त्रिदेवों की अनुचित माँग पूरी की अपने प्राणबल से ही उन्हें शिशु बनाकर। इस प्रकार की एक नहीं, अनेकों आख्यायिकाएँ मिलती हैं।

प्राणविद्या प्राचीन विद्या है। शिष्यगण इसे प्राप्त करने के लिए इसके ज्ञाता गुरुओं की खोज करते और सुयोग्य गुरु मिलने पर उनके आश्रम में रहते हुए सेवा करते।

गुरु भी योग्य शिष्य पाकर प्राण विद्या सिखाते और अपने प्राणांश का दान करते। ऐसी परम्परा प्राचीनकालीन गुरुओं द्वारा किये गये प्राणदान का वर्णन करने बैठें तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ ही बन जायगा। इसलिए निकटस्थ भूतकाल की चर्चा ही पर्याप्त होगी।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने अपने शिष्य स्वामी विवेकानन्द को प्राणांश प्रदान किया था। स्वामी विवेकानन्द ने भी अपनी शिष्या

सिस्टर निवेदिता को उसी प्रकार उपकृत किया। प्राणशक्ति के संचार द्वारा ही महर्षि अरविन्द ने पेरिस से यज्ञशिखा माँ को बुलाकर योगविद्या में निष्णात किया।

यह सब प्राण साधना का ही परिणाम है। इस साधना का उद्‌देश्य सूर्य द्वारा निःसृत प्राण प्रवाह को अभीष्ट परिमाण में आकर्षित करना है। योग साधना में इस साधना का महत्वपूर्ण स्थान है। कुण्डलिनी साधना में नादयोग का भी आश्रय लिया है। उसमें अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। इस साधना से चित्त वृत्तियाँ भी एकाग्र होती है तथा लोक-लोकान्तरों से प्राणशक्ति का भी आकर्षण होता है।

चित्त वृत्तियों को एकाग्र करने का प्रमुख साधन प्राण साधना, अष्टांग योग का चौथा अ'ग प्राणायाम हैं। वस्तुतः यह सब प्राण विद्या की ही एक विधि है, जिसके विषय में उपनिषदों में पर्याप्त विवेचन मिलता है।

प्राण साधना के प्रति अनेकों विदेशी विद्वान् भी बहुत आकर्षित हैं और वे उस पर विभिन्न प्रकार के प्रयोगों द्वारा निष्कर्ष निकालते हैं। हाँगकाँग के एक अमेरिकी वैज्ञानिक आर्नोल्ड फास्ट ने अनेक रोगियों को सम्मोहन द्वारा निद्रित कर सफलता पूर्वक उनके ऑपरेशन किये। किन्तु सम्मोहन विद्या कोई जादू नहीं, वरन् विशुद्ध प्राण विद्या ही है।

वैज्ञानिक मोडेल्यूज ने अन्वेषण द्वारा यह पाया कि प्राणशक्ति के द्वारा रोगों का उपचार कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है, वरन् प्रयास करने पर उसके अत्यन्त उच्च स्तरीय परिणाम निकल सकते हैं। फ्रांस के एक वैज्ञानिक ने भी यह सिद्ध कर दिया कि प्राणशक्ति का प्रभाव किसी भी महत्वपूर्ण उपचार से अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

प्राण का महत्व चेतन और जड़ दोनों रूप में ही अपनी-अपनी विशेषता रखता है। चेतन जगत् में जिसे संवेदना कहते हैं, उसमें इच्छा, क्रिया और ज्ञान तीनों ही शक्तियों का समावेश रहता है। विश्व की जितनी गतिशीलता है, वह सब इन्हीं शक्तियों के अंश रूप में रहती है।

जड़ जगत् में प्राण की अभिव्यक्ति शक्ति तरङ्गों के रूप में होती है। यह तरंगें वातावरण में छाई रहती और पदार्थों को प्रभावित करती हुई पदार्थों से ही निर्गत होती हैं। यह तरंगें मानव शरीर में भी मिलती हैं। जिनका प्रत्यक्ष दर्शन अनेक विशेषज्ञ कर चुके हैं।

स्विटजरलेंड के एक चिकित्सक श्री सेलसन्स ने अनेक रोगों का कारण शरीरस्थ चुम्बक तथा उसकी विकृति ही माना है। जिन रोगो का निदान और चिकित्सा किसी प्रयोग से न हो सकी, उन रोगों से चुम्बकीय प्रयोग द्वारा छुटकारा मिल सकता है। वस्तुतः चुम्बकत्व के उत्तरी ध्रुव द्वारा जीवाणु क्रिया का नियन्त्रण और दक्षिणी ध्रुव द्वारा पोषण होता है। यह चुम्बकीय दोनों धारायें प्राणशक्ति पर ही आधारित हैं।

रिपोर्ट आफ दि डाइलोक्टिल सोसाइटीआन स्प्रिच्युलिजम में लार्ड अडारे द्वारा प्रकाशित विवरण के अनुसार होम नामक एक व्यक्ति बहुत चमत्कारिक हुआ। उन्होंने उस व्यक्ति को हवा में तैरता हुआ अपनी आंखों से देखा। रायल एस्ट्रोनोमिकल सोसाइटी के अध्यक्ष का साक्ष्य भी उस विवरण में प्रमाण स्वरूप था। वह व्यक्ति हवा में ही नहीं उड़ सकता था, देर तक हाथों पर दहकते हुए अंगारे भी रख सकता था।

हवा में तैरने के अनेक प्रसंग इटली के सरकारी रिकार्ड में उपलब्ध है, जो वहाँ के अधिकारियों ने जांच पड़ताल के पश्चात् दर्ज कराये थे।

यह जोसेफ नामक एक अद्भुत व्यक्ति के विषय में हैं, जो ऊँचाई पर रखी हुई क्राइस्ट की मूर्तियों तक उछल जाता और कुछ देर हवा में अधर लटका हुआ तैरता रहता है। यह व्यक्ति एक पादरी था।

जोसेफ में इस प्रकार की शक्ति कैसे उत्पन्न हुई? इस विषय में बताया जाता है कि उसका पिता बढ़ईगीरी करता था, किन्तु उसमें उसका गुजारा नहीं होता था। वह अपनी पत्नी को साथ लेकर जीविका की खोज में अन्यत्र चल पड़ा। पत्नी गर्भवती थी, मार्ग में ही उसने जोसेफ को जन्म दिया, जो कि जन्म से ही रोगी था।

उसके पिता के पास चिकित्सा कराने के लिए भी धन नहीं था, किन्तु एक सन्त से उसकी भेंट हुई तो सन्त ने बताया कि 'इसका शरीर तो नष्ट प्राय: हो चुका है, केवल आत्मा ही शेष है, फिर भी यह जीवित रहेगा और पादरी बनेगा।'

सन्त की कृपा से जोसेफ स्वस्थ हो गया। बाल्यकाल से ही वह उपासना में लगा रहने लगा और उसके फलस्वरूप उसे हवा में तैरने की शक्ति प्राप्त हो गई।

इस प्रकार की सिद्धियां हमारे देश में प्राचीन काल से ही सामान्य उपलब्धियों का विषय रही हैं। हमारे अनेक योगीजन इन सिद्धियों को साधना में व्यवधान समझकर प्रयोग करना भी उचित नहीं समझते थे। अधिक आवश्यक होने पर ही वे उन सिद्धियों का प्रयोग करते थे। आकाश-गमन, जल पर चलना, आग में प्रविष्ट होना आदि सिद्धियां योगियों के लिये साधारण बात ही थी।

वस्तुतः मनुष्य शरीरों में जो बीज रूप से समस्त भौतिक साधन विद्यमान हैं, यदि उन्हें स्थूल से सूक्ष्म बना लिया जाय तो शरीर को इच्छानुसार हल्का बनाया जा सकता है। उसी आधार पर गुरुत्वाकर्षण

से शरीर को अप्रभावित रखते हुए आकाश गमन या आकाश में उड़ना सम्भव हो सकता है ।

विज्ञान ने स्पष्ट किया है कि जल की ऊपरी सतह पर एक झिल्ली जैसी सूक्ष्म पर्त रहती है, जो कि घनी भी हो जाती है । जब अधिक ठंड पड़ती है तब इस ऊपरी पर्त से ही पानी का जमाव आरम्भ होता है । उस सतह पर कोई भी इतनी हल्की वस्तु जो सतह को तोड़ने में समर्थ न हो, निरन्तर तैरती रह सकती है ।

आप देखते होंगे कि पानी पर कागज का टुकड़ा डाले तो वह डूबेगा नहीं । लकड़ी, प्लास्टिक आदि भी, जो पानी के कणों से हल्के हों ऊपर ही तैरते रहते हैं । जो भी वस्तु पानी के कणों से हल्की होगी, डूबने से बची रहेगी । डैड सी में क्षारों की अधिकता होने के कारण उसका पानी भारी होता है, इसलिए उसमें किसी मनुष्य के डूबने की सम्भावना नहीं रहती । क्योंकि डैड सी में पानी के कण मनुष्य शरीर की अपेक्षा अधिक भारी होते हैं ।

कुछ सन्त पुरुषों के विषय में कहा जाता है कि वे नदी में खड़े चल सकते हैं । मथुरा में एक सिद्ध पुरुष के विषय में लोगों का कहना था कि वे नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठकर जल पर चलते हुये यमुना पार दुर्वासा ऋषि के दर्शन करने जाते और उसी मार्ग से लौट आते थे ।

इसमें यही सिद्धांत कार्य करता है कि शरीर के कणों को हल्के कर लिया जाय । योगाभ्यास द्वारा कणों को इसी प्रकार हल्का किया जा सकता है । योग ग्रन्थों में जिन अणिमादि सिद्धियों की चर्चा मिलती है, उनका आधार एकमात्र यही सिद्धांत माना जाता है । इसी प्रक्रिया के द्वारा शरीर कणों को स्थूल से सूक्ष्म से स्थूल बना सकते हैं ।

इसी सिद्धांत के अनुसार स्थूल शरीर गुरुत्वाकर्षण की परिधि से निकलकर आकाशस्थ वायुमण्डल में पहुँचा जा सकता है । वहाँ चलना,

उड़ना आदि क्रिया-कलाप भी उसी प्रकार हो सकते हैं। अगस्त १९५२ में अन्तरिक्ष यात्री निकोलायेव ने कहा था कि अन्तरिक्ष में धरती, फर्श, दीवाल आदि के स्पर्श की आवश्यकता नहीं होती। वहाँ मनुष्य खाली पोल में स्वाभाविक रूप से ही चल सकता है। यान की दीवाल से अँगुली को छुवाते हुए केवल एक हल्का धक्का ही पर्याप्त है। इतना करने मात्र से गति उत्पन्न हो जाती है और मनुष्य आराम से चलता रह सकता है। किसी भी दिशा में बढ़ने के लिए हाथ-पाँवों की सहायता पर्याप्त होगी। जैसे पानी पर तैरने में हाथ-पाँवों के धक्के से गति बढ़ाई जाती है, वैसे ही अन्तरिक्ष के शून्य में भी तैर सकते हैं।

धरती पर ही गुरुत्वाकर्षण-हीन ऐसे कक्ष बताये गये, जिनमें रख कर अन्तरिक्ष यात्रियों को भार-रहित होने की अवस्था लाने का अभ्यास कराया जाने लगा है। इसके फलस्वरूप गुरुत्वाकर्षण की परिधि में उठने से पहिले भी आकाश गमन किया जाना सम्भव हो सका है। इस प्रकार की स्थिति को उत्पन्न करके प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया जा चुका है।

इससे स्पष्ट है कि भारतीय योगियों की आकाश गमन वाली बात यथार्थ है, उसमें किसी प्रकार की कपोल कल्पना नहीं है। वैज्ञानिक अनुसन्धानों से पूर्व लोगों को इन बातों पर बहुत कम विश्वास था। किन्तु अब ऐसा कोई कारण नहीं रह गया है कि उन सिद्धियों के विषय में किसी प्रकार का अविश्वास किया जा सके, जिनके विषय में योग ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध हैं तथा जो सिद्ध पुरुषों के विषय में सामान्य चर्चा का विषय बनी हुई थीं।

रामायण और महाभारत में ऐसे अनेकानेक अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन मिलता है, जिनके विषय में आज से चालीस-पचास वर्ष पहिले तक

अविश्वास व्यक्त किया जाता था। रावण, मेघनाथ आदि की आसुरी माया के विषय में सुनकर भी विश्वास किया जाना कठिन होता था। आज विज्ञान ने उन सब अविश्वासों का खण्डन प्रत्यक्ष रूप से कर दिखाया है। रामायण और महाभारत कालीन शस्त्रास्त्र तथा आसुरी माया जैसे चमत्कार भी वर्तमान कालीन वैज्ञानिक चमत्कारों के समक्ष फीके पड चुके हैं।

इससे स्पष्ट हैं कि अब से कुछ समय पूर्व तक हम जिन कार्यों को सन्देह और अविश्वास की दृष्टि से देखते थे, उनके प्रति हम अनजान थे। आज भी बहुत से व्यक्ति जिन असाधारण प्रक्रियाओं के विषय में नहीं जानते, वे विज्ञान द्वारा मान्य होने पर भी उनमें शंका व्यक्त करते रहते हैं।

परन्तु उन्हें समझना चाहिये कि संसार में असम्भव कुछ भी नहीं हैं। मनुष्य जो कुछ चाहे करने में समर्थ हो सकता है केवल आत्मबल एवं प्राणबल से। अध्यात्म शास्त्र ने इन दोनों को एक ही माना है। यह भौतिक विज्ञान से भिन्न, किन्तु उससे कहीं अत्यधिक बलशाली प्राण विज्ञान है। यदि हम उसका आश्रय लें तो उस अलौकिक ऊर्जा का आकर्षण सहज सम्भव है।

———

प्राणशक्ति के असाधारण चमत्कार

शरीर को सभी क्रियाओं का संचालन प्राणशक्ति के द्वारा ही होता है। संचार कोशिकाओं में ऋण और धन प्रभारों के भीतर-बाहर होते रहने से ही शरीर की सब क्रियाएँ यथावत् सम्पन्न होती हैं। अमाशय और आँतों में आहार का परिपाक होकर रस रूप हो जाता है। वह रस अन्यान्य रसों के साथ मिलता हुआ समूचे शरीर में फैल जाता है। रसायन क्रिया के कारण जो विद्युतीय प्रतिक्रिया होती है, उसे आधुनिक विशेषज्ञ सोडियम पंप कहते हैं। सोडियम कणों के संसर्ग से पोषक रसों में जो भेदन क्रिया उसके साथ ही उन रसों का संचार बढ़ जाता हैं। यह क्रिया 'प्राण' की क्रिया है।

वस्तुतः इस प्रकार की प्रक्रिया सभी कोषों में होती है, क्योंकि प्रत्येक कोष उससे अपने लिए उपयुक्त आहार का आकर्षण करता उसका परिवर्तन ऊर्जा रूप में कर देता है। ऐसी ऊर्जा समस्त शरीर में निरन्तर होती रहती है। इसे 'समान' की क्रिया कहनी चाहिये।

जब रस का परिपाक होता है, तब जीर्ण कोषों के टूटने या क्षीण होने से उनका परिवर्तन मल रूप में हो जाता है। इस प्रकार की क्रिया विद्युतीय रसायनों के प्रभाव से होती है। पंचप्राण के अन्तर्गत जिसे 'अपान' कहते हैं, यह क्रिया उसी की है।

वैज्ञानिकों ने जिसे इलेक्ट्रिकल स्टिमुलाइजेशन कहा है, उसमें शरीर के अवयवों को कड़े, सबल तथा अपेक्षानुसार प्रयुक्त हो सकते हैं। क्रिया 'उदान' के अन्तर्गत आती है।

रसायन विज्ञान के सिद्धान्तानुसार रासायनिक पदार्थों के अणु किसी घोल विशेष में ऋण और धन प्रकार के साथ विभिन्न कणों के रूप में जाते हैं, जो कि अयन कहलाते हैं। यह अत्यधिक संचार क्षमता वाले अयन अभीष्ट संचरण के पश्चात् परस्पर मिलकर पुनः न्यूट्रल अणु रूप हो जाते हैं। शरीर की भी सभी क्रियाएँ इसी आधार पर निर्भर हैं। किन्तु इस समूचे विश्लेषण में यही एक तथ्य प्रतिपादित होता है कि यह जो कुछ भी है वह प्राणशक्ति ही है। समस्त क्रियाएँ उसी के द्वारा चलती रहती हैं।

यदि विवेचनात्मक दृष्टि से देखें तो प्राचीन सिद्धान्त के अनेक अंशों को ही नवीन सिद्धांत प्रकारान्तर से व्यक्त करते हैं। एक ही पदार्थ के देश-कालानुसार अनेक नाम हो सकते हैं, किन्तु उसके क्रिया-कलाप के विषय में ठीक प्रकार से तभी जाना जा सकता है, जब उस विषय में अधिक गहरे प्रविष्ट हुआ जाय।

आधुनिक विज्ञान ने शरीर की स्थूल स्थिति में प्राणांश के योगदान का जो अनुभव किया, उसके अनुसार यह समझना होगा कि वह ज्ञान अभी उतना पूर्ण नहीं हैं, जितना प्राणविद्या के आचार्यों द्वारा प्रकाश में लाया जा चुका है। वस्तुतः विज्ञान जिस प्रक्रिया से संचालित है, वह भौतिक तत्वों से ही अधिक सम्बन्ध रखती है।

इस प्रकार की प्रक्रिया से आगे बढ़ें तो स्थूल से भिन्न सूक्ष्म गति-विधियों का विश्लेषण अपेक्षित होता है। परन्तु कोई भी स्थूल या सूक्ष्म प्रक्रिया ऐसी नहीं है, जिसमें किसी न किसी प्रकार से प्राण सत्ता का योगदान न हो।

इस प्रकार प्राणसत्ता का अत्यधिक ज्ञान हमारे मनीषियों को था, जिसके बल पर वे समस्त विश्व को अपने वश में रखने में समर्थ थे। वे

शाप या अनुग्रह जो कुछ भी करते, वह असत्य तो कभी हो ही नहीं सकता था। पुराण वृत्तान्त के अनुसार एक महर्षि समुद्र का समस्त पानी चुल्लू भर-भरकर पी गये। एक महर्षि ने राजा सागर के साठ हजार पुत्रों को बात की बात में भस्म कर दिया। एक महर्षि ने पर्वत को ही नीचा झुका दिया। और तो और एक ऋषि पत्नी ने सूर्योदय होने से ही रोक दिया।

यह सब किस प्रकार हो गया? आत्मबल के बिना ऐसा कुछ भी होना असम्भव था। आत्मबल प्रकारान्तर से प्राणबल ही हैं। संसार में अद्भुत सामान्य तथा लौकिक जो कुछ भी होता हैं, उस सबकी कारण एकमात्र प्राण सत्ता ही है। यह एक भिन्न बात है कि उस सत्ता से कौन, किस प्रकार, कितना कम या अधिक कार्य लेने में सफल होता है।

उस प्राणसत्ता को आकर्षित करने के उद्देश्य से योगीजन प्राणायाम का अभ्यास किया करते थे। नासिका का कार्य श्वास लेना और छोड़ना है तथा बह निरन्तर इसी कार्य में लगी रहती है। इस कार्य के लिए किसी को कुछ प्रयत्न भी नहीं करना होता, क्योंकि यह सभी प्राणियों की स्वाभाविक क्रिया है। इस विषय में लोग शंका करते हैं कि प्राणायाम भी श्वास-निश्वास की ही क्रिया है, तब इसके अभ्यास में विशेषता ही क्या होगी?

वस्तुत: श्वास और प्राण में अन्तर है। वायु के स्तर विभिन्न हैं, उनमें विभिन्न अंशों में प्राण-ऊर्जा विद्यमान रहती है। वैज्ञानिक भी यह मानते हैं कि वातावरण में ऑक्सीजन घुला रहता हैं। यद्यपि ऑक्सीजन विशुद्ध प्राणतत्व तो नहीं, किन्तु उसमें प्राणांश मिला रहता है।

प्राणायाम के अभ्यास द्वारा हम अपने श्वास में साथ खींची जाने वाली वायु के साथ अधिक प्राणांश, अधिक ऑक्सीजन खींच सकते हैं।

हमें जितना ही अधिक प्राणांश उपलब्ध होगा, उतने ही अधिक आंतरिक प्राण भी सबल होंगे ।

वस्तुतः प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य यही है कि हम निखिल विश्व में विद्यमान प्राण-ऊर्जा को आकर्षित करके उससे अधिकाधिक मात्रा में प्राणांश प्राप्त कर सकें । प्राण तत्व को आकर्षित कर उसे शरीर के विभिन्न अङ्गों में पहुँचाना इसी विद्या के द्वारा सम्भव है । यदि हम इसके अभ्यास में सफल हो जाँय तो असीमित शक्ति अर्जित कर सकते हैं ।

शरीर की अस्वस्थता का मुख्य कारण कोई रोग विशेष हो सकता है । किन्तु शरीर को रोग ग्रहण के योग्य बनाने में विशेष हाथ प्राणशक्ति के असन्तुलन का ही है । यदि प्राणशक्ति को सन्तुलित कर लिया जाय तो बहुत से रोगों से स्वाभाविक रूप से ही बचे रह सकते हैं । फिर सभी अङ्ग अपने कार्य को सुचारु रूप से करते रहेंगे और शरीर स्वस्थ तो मन भी स्वस्थ और प्रसन्न रहेगा ।

मनुष्य के मानसिक विकारों का कारण भी बहुत कुछ प्राण शक्ति का असन्तुलन ही है । प्राण में प्रकाश है, उसके अणु चमकते हैं । मनुष्य को क्रोध आता है तो प्राण के प्रकाश में कम्पन आ जाता है । उसके शरीर में स्पन्दन की वृद्धि हो जाती है । एक हृदय रोगी के विषय में हमें ज्ञात है कि जब भी उसे क्रोध आता हृदय का स्पन्दन बढ़ जाता । एक दिन जैसे ही उसने अधिक क्रोध किया वैसे ही हृदय की उत्तेजना बढ़ी और फिर हृदयावसाद । क्रोध आया, जीवन चला गया । उत्तेजना बढ़ी तो फिर ऐसी शान्त हुई कि रोगी को सदा सदा के लिए विश्राम मिल गया ।

एक जे० सी० ट्रस्ट नाम की विशेषज्ञा हुई हैं वे परीक्षण और उपचार में लगी रहतीं । । एक बार उन्होंने सामान्य बातों पर भी

क्रोधित हो जाने वाले एक व्यक्ति पर परीक्षण आरम्भ किया। वह व्यक्ति नित्य प्रति ही गुस्से में भरा रहता। उसे कई बार कुपित होने के कारण दुर्बलता ने आ घेरा। अब उसका शरीर इतना अशक्त हो चुका था कि वह ऋतुओं के परिवर्तनों से होने वाली ठण्ड, गर्मी आदि को भी सहने में समर्थ नहीं था।

श्रीमती ट्रस्ट ने उसके लिए पहिले से ही कुछ सोच लिया था। इसलिए वह ज्योंही अधिक क्रोध में भरा त्योंही उन्होंने उसे नङ्गा लिटाकर उसके शरीर को बालू की पर्त से ढँक दिया। उस समय उनके शिष्यगण तथा कुछ वैज्ञानिक भी उपस्थित थे। उन्होंने विस्मय से देखा कि उसके शरीर से निरन्तर निःसृत होते हुए प्रकाश कण थर-थरी उत्पन्न कर रहे थे।

उनका अनुभव था कि क्रोध की न्यून या अधिक जैसी भी अवस्था हो, प्रकाश कण भी उतनीं ही कम या अधिक तेजी से निःसृत होते और उतनी ही कम या अधिक थरथरी उत्पन्न करते हैं।

वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार ज्ञान तन्तुओं में एक प्रकार के विद्युतीय आवेग रहते हैं। ज्ञान तन्तुओं की तुलना बिजली के उन तारो से की जा सकती है, जिनका कार्य सन्देशों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहूँचाना है। इन ज्ञान तन्तुओं पर भी उसी प्रकार सन्देश दौड़ते हैं।

यह ज्ञान तन्तु कई कई फिट लम्बे होते हैं। यदि इन सब का परि-माण देखा जाय तो इनकी लम्बाई समूचे शरीर के ज्ञानतन्तुओं को मिला कर एक लाख मील से भी अधिक हो सकती है। किन्तु मोटाई इतनी कम कि इञ्च का केवल सौवाँ भाग।

ज्ञान तन्तुओं से जो विद्युत्-आवेग (इम्पल्स) प्रवाहित होते हैं, उनकी गति प्रति सैकण्ड़ तीन सौ फिट है। यद्यपि यह गति टेलीफोन

की विद्युत के अनुपात में बहुत कम है। किन्तु टेलीफोन की विद्युत् विशुद्ध होती है, इसलिए उसकी गति में तीव्रता रहती है, जबकि ज्ञान तन्तुओं में बिद्यमान विद्युत् के साथ विभिन्न रासायनिक तत्वों का भी समावेश रहता है।

मानव मस्तिष्क में नस कोष्टों (न्यूरान्स) की संख्या लगभग दस अरब हैं। इनमें से प्रत्येक का प्रायः पच्चीस हजार दूसरे नस कोष्टों से सम्बन्ध रहता है।

समूचे शरीर में ही विद्युत् व्याप्त है। यह विद्युत् अपनी विशेषता लिए हुए हैं। इसमें चेतना और संवेदना के दोनों स्तर रहते हैं। इसलिए साधारण विद्युत् से तो उसकी भिन्नता होनी ही चाहिए। इस विद्युत् में वे सभी गुण विद्यमान रहते हैं जो मनुष्य के क्रिया कलापों में बिद्यमान हों अनाचार रत मनुष्यों की शारीरिक विद्युत् भी उसके दोषों के कारण उसी प्रकार के मलीन प्रभाव वाली होगी। जबकि संदाचारी मनुष्य में निहित विद्युत् का प्रवाह श्रेष्ठ तरङ्गों से युक्त और लोकहित में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

सिर पर वरद् हस्त और चरण स्पर्श वाली प्रथा में यही रहस्य है। किसी सदाचारी, सात्विक दिनचर्या वाले शुद्ध मन बुद्धि वाले श्रेष्ठ पुरुष का हाथ जब किसी के सिर पर रख जाता है, तब उस पुरुष की प्राण विद्युत् स्पर्श मात्र से कल्याणकारी होती है। अनेक सिद्ध पुरुषों के विषय में कहा जाता है कि यदि वे किसी रोगी के सिर पर हाथ रख दें तो उसका रोग ठीक हो जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं।

चरण स्पर्श करने पर भीं सदाचारी श्रेष्ट पुरुषों की प्राण विद्युत् का अंश उपलब्ध हो सकता है। इसलिए एक मान्यता यह भी है कि उन्हीं के चरण स्पर्श करने चाहिए, जिन्हें हम श्रेष्ठ व्यक्ति तथा पूज्य समझते हों।

जैसे बिजली की लाइन पॉइण्ट रहते हैं, जिनमें प्लक, स्विच, बल्ब, होल्डर आदि लगा कर प्रकाशादि की प्राप्ति की जा सकती है। वैसे ही मानव शरीर में हाथ-पांव की अँगुलियों के मार्ग से विद्युत् प्रवाह निःसृत होता रहता हैं। यह मानवीय विद्युत् के विशेष पॉइण्ट ही हैं।

प्रायः देखते हैं कि अनेक सिद्ध पुरुष किसी को अपने चरण स्पर्श नहीं करने देते और न किसी के सिर पर आशीर्वाद का हाथ ही रखते है। उसका मुख्य कारण यही हैं कि वे चाहते हैं कि साधना द्वारा जितनी ऊर्जा उन्हें उपलब्ध हो सकी है, उसका अंश अन्यत्र न चला जाय। एक सिद्ध पुरुष चरण स्पर्श कराने से बचते थे विशेष कर महिलाओं से। उनका कहना था कि 'महिलाओं से चरण स्पर्श कराने से मन पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है और उससे तपस्या नष्ट हो सकती है।'

इसका अभिप्राय यही है कि श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्मचर्य पालन को अधिक महत्व देते हैं। वे स्त्रियों के सम्पर्क से सभी प्रकार बचना ही श्रेयस्कर मानते हैं। क्योंकि ब्रह्मचारियों, योगियों, संन्यासियों आदि के लिए स्त्रियों से सम्पर्क रखना उचित नहीं समझा जाता।

कामुकता मनुष्य के पतन में और नैतिकता उत्थान में सहायक होती है। कामुकता के कारण मानय मस्तिष्क सदा ही विकार ग्रस्त बना रहता हैं, जिसके फलस्वरुप प्राण भी दुर्बल होने लगता है। प्राण को सबल रखते हुए आत्मोत्थान की दृष्टि से इन्द्रिय संयम बहुत आवश्यक है।

प्राण की सबलता मनुष्य को सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष देने वाली होती है। कुछ शरीरों में प्राणशक्ति जब दुर्बल से सबल होती है तब जीवन

में एकदम परिवर्तन ला देती है। ऐसे अनेक वर्णन मिलते है, जिनमें प्राणशक्ति की न्यूनाधिकता ने जीवन की धारा ही बदल दी। ऐसे अनेक व्यक्तियों में आकर्षण शक्ति बढ़ गई और वे चिकित्सकों तथा विशेषज्ञों के लिए भी पहेली बन गए।

एक वार एक पत्रिका में ओंटारियो (कनाडा) की एक घटना छपी थी, जिसके अनुसार कैरोलिन क्लेयर नाम की एक स्त्री डेड़ वर्ष तक रुग्ण रहने पश्चात् जब स्वस्थ हुई तो उसमें एक अद्भुत परिवर्तन आ गया। वह धातु से निर्मित जिस वस्तु का स्पर्श करती, वही उससे चिपक जाती। उसके शरीरमें बुम्बककी यह धारा विचित्र रूपसे उत्पन्न हुईथी, जिससे उसके घर के लोग भी बहुत परेशान थे। वे उस चिपकी हुई वस्तु को कठिनाई से छुड़ा पाते थे।

इसी क्षेत्र के वोंडन नामक गाँव की एक लड़की में भी इसी प्रकार का चुम्बकत्व उत्पन्न हो गया था। वह भी धातु की जिस वस्तु को छूती वह उससे चिपक जाती थी। इसलिए उसे भोजनादि भी लकड़ी या कांच के वर्तनों में कराया जाता।

लुइ है वर्गर नामक एक लड़के में भी चुम्बकीय शक्ति इतनी अधिक बढ़ी हुई मिली कि सभी धातु निर्मित वस्तुएँ उससे चिपक जाती, जब कोई बलपूर्वक उन्हें छुड़ाता तभी छूट पाती।

एक बार लन्दन के स्नायु-विशेषज्ञ डॉ० जान ऐश क्राफ्ट जेनी मार्गन नामकी एक ग्यारह वर्षीय लड़की के पास परीक्षणार्थ पहुँचे और उन्होंने उससे हाथ मिलाने को ज्योंही अपना हाथ आगे वढ़ाया कि एक ऐसा झटका लगा जिससे वे दूर जा गिरे और उन्हें बहुत देर बाद जब होश आया तो उन्होंने देखा कि एक चिकित्सक उनका उपचार कर रहा है।

अब डॉ० क्राफ्ट की धारणा बनी कि इसके शरीर में हजारो वोल्ट विद्युत प्रभार शक्ति होनी चाहिए। यही स्थिति एक दिन एक ताला बेचने वाले की हुई। उसने ज्योंही एक ताला उसके हाथ पर रखा कि झटका खाकर पीछे की ओर जा पड़ा।

एक युवक जेनी से प्रेम करने लगा। उसने एक दिन जेनी को ओपेरा में कॉफी पर निमन्त्रित किया। कॉफी पीने के बाद जेनी उठकर चलन को हुई कि उसका पाँव फिसल गया और वह गिर गई। युवक ने उसे दौड़कर उठाया, किन्तु उसे छूते ही स्वयंभी ऐसा गिरा कि एक मेज से जा टकराया। बेचारा प्रेम करना ही भूल गया।

अब वैज्ञानिक के लिए जेनी एक समस्या बन गई। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि उसके शरीर में इतना तगड़ा विद्युत प्रभार किस प्रकार उत्पन्न हो गया। किन्तु कुछ वर्षों के अनन्तर उसकी वह क्षमता एकदम गायब हो गई।

टोकियो के नेशनल मेडिकल रिसर्च इन्स्टीटयूट मानव विद्युत के विषय में पर्याप्त अन्वेषण करता रहा है। उसके वैज्ञानिकों का निष्कर्ष हैं कि सामान्यत: मानव शरीर में विद्युत की इतनी मात्रा पाई जाती है, जितने से कि पच्चीस से साठ वोल्ट तक का बल्व जल सकता हो। किन्तु इससे अधिक शक्ति पाई जाय तो अवश्य कोई अज्ञात कारण होना चाहिए।

जेनेवा की एक तरुणी जेनेट डरनी जब सोलह सत्रह वर्ष की थी तब वह रुग्ण होने के कारण उसका वजन अत्यधिक कम हो गया और उसके साथ ही उसका असाधारण विद्युत भार भी पर्याप्त कम हो गया इस स्थिति में वह धातु की किसी वस्तु का स्पर्श करती तो उसकी अँगुलियों से चिनगारियाँ निकल पड़तीं। उसके बाद उसकी मानसिक स्थिति भी प्रभावित हुई, वह सहसा ही ध्यानस्थ होती और उस अवस्था

में उसे ऐसी घटनाओं की अनुभूति होने लगी जो निकट भविष्य में घटने वाली थीं। अब वह जिसके विषय में जो कुछ बताती वह सत्य होकर रहता। हजारों मील दूर की बात उसी प्रकार बताने लगी जैसे वह स्वयं उस दृश्य को देख रही हो।

वैज्ञानिक ने बहुत समय तक उसकी इस क्षमता के विषय में अनुसन्धान करते रहे, किन्तु उसका कारण तो न जान सके, पर इतना निष्कर्ष अवश्य निकल पाया कि ऐसी विलक्षण क्षमता वाले में अतीन्द्रिय क्षमताएँ विकसित हो जाती हैं।

इस प्रकार अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकास योग साधना से अवश्य हो सकता है। कुछ ऐसे व्यक्ति जो जन्म से ही बिलक्षण शक्तियों से सम्पन्न हुए उत्पन्न होते हैं, उनमें भी इस प्रकार की क्षमताएँ उत्पन्न हो सकती है।

रुसी वैज्ञानिकों के लिए भी मास्को की एक लड़की माइखेलोबा समस्याबन गई थी। वह अपने दृष्टिपात से ही चलती हुई घड़ियों को रोक सकती तथा उसकी सुइयों को आगे पीछे घुमा सकती थी। वैज्ञानिकों ने इतना ही निष्कर्ष निकाला कि यह मस्तिष्क की विद्युत् का चुम्बकीय चमत्कार हो सकता है। उनके मत में यद्यपि यह शक्ति सभी मनुष्यों में विद्यमान रहती है, किन्तु किसी किसी में किसी कारण विशेष से उसकी अधिक मात्रा का उदय हो जाता हैं।

किन्तु उक्त घटना से यह मान्यता बनती है कि मानवी विद्युत् का खजाना मस्तिष्क ही है। उसकी धारा सिर, नेत्रों तथा हाथों में अधिक प्रवाहित रहती हैं। वस्तुतः मानव शरीर प्राणजन्य विद्युत् का भण्डार ही है, किन्तु उसके अभीष्ट उपयोग में बहुत कम व्यक्ति ही सफल रहते हैं। आज का विज्ञान उसे यन्त्रों द्वारा देखने में भी सफल हुआ है। उसकी शक्ति भौतिक विद्युत् से वहुत ऊँचे स्तर की है। नेत्रो में दिखाई

देने वाली चमक बल्व में प्रकाशित चमक से किसी प्रकार भी कम नहीं है। किन्तु यदि नेत्रों में विद्यमान विद्युत् किसी प्रकार से विलक्षण प्रतीत हो तो वह उस मनुष्य की व्यक्तिगत विशेषता ही समझी जायगी।

मानव विद्युत् की असाधारण शक्ति का प्रमाण इससे बढ़कर और क्या होगा कि यदि मनुष्य उसे जाग्रत कर ले तो अपनी इच्छा से ही चाहे जैसे विलक्षण और असम्भव कार्यों को सम्पन्न करने में समर्थ हो सकता है। वह अपनी प्राण विद्युत के प्रवाह को जिधर चाहे मोड़ सकता है। क्योंकि इच्छा शक्ति ही उस विद्युत का नियन्त्रण कर सकती है।

मानवी विद्युत के प्रभाव से चाहे जिसे आकर्षित किया जा सकता है। मनुष्य तो क्या पशु भी वश में हो जाते हैं। भूत-प्रेतादि के विषय में बहुत से व्यक्ति अविश्वास व्यक्त करते हैं, किन्तु जब कभी इस प्रकार की कोई घटना समाचार पत्रों में स्थान पाती है, तब उस विषय में सचाई अनुभव की जाती है। बहुत से अविश्वासी मनुष्य भी कभी कभी उन घटनाओं को स्वयं देखने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं।

वस्तुतः अनेक आत्माएँ कर्मानुसार शरीर प्राप्ति से वञ्चित रह जाती हैं, वे विद्यमान तो रहती ही हैं। अशुभ कर्मियों को पृथिवी की परिधि में ही अपने प्राणमय शरीर के साथ घूमने को विवश होना पड़ता है। वे यदि भूत-प्रेत के नाम से कहे जाने लगें तो कोई अत्युक्ति नहीं।

किन्तु शुभ कर्मी आत्माएँ यदि पुनर्जन्म नही पाती तो पृथिवी के वातावरण से बहुत ऊँची चली जाती हैं। कुछ विशेषज्ञ जब माध्यम द्वारा ऐसी आत्माओं का आह्वान करते हैं, तव उन्हें नीचे के वातावरण

में आने में कष्ट होता है। यह तथ्य इस प्रकार की आत्माओं के बताने पर ही सामने आए हैं और समय समय पर समाचार पत्रों में भी इन पर प्रकाश डाला जाता रहा है।

भूत-प्रेत का प्रसङ्ग वहीं से चला जहाँ मानव विद्युत द्वारा आकर्षण की चर्चा आरम्भ हुई। मनुष्य, पशु, पक्षी, भूत-प्रेत, देवता आदि सभी को आकर्षित किया जाना सम्भव है। मनुष्य अपनी बलवती इच्छा शक्ति के बल पर अपनी अपनी शरीरस्थ विद्युत को इस योग्य बना सकता है कि चाहे जिससे चाहे जो काम ले सके। किन्तु सामान्य शक्ति वाला मनुष्य वैसा करने में असमर्थ रहता है। उसे आश्चर्य होता है उन ,घटनाओं को देखकर जिनमें कुछ भी विलक्षणता का समावेश प्रतीत हो।

प्राण तत्व का जागरण

प्राण तत्व सभी प्राणियों के साथ रहता है। आत्मा उसी के सहारे शरीर में प्रवेश करती और रहती है। इसके अस्तित्व की जानकारी हमारे ऋषियों के लाखों वर्ष पहिले हो चुकी थी। उन्हें यह भी ज्ञात हो चुका था कि प्रकृति के जो अनुदान मनुष्यों को प्राप्त हुए है, उन्हें न जानने के कारण ही विशेष लाभों से वंचित है।

शरीर में विद्यमान प्राण तत्व उसी रूप में निष्प्रयोजन रहा आता है, जैसे उपयोग के बिना विद्युत किसी कार्य में नहीं आती। जब तक

बिद्युत् मोटर के उपयोग की जानकारी नहीं हो सकी तब उसका प्रयोग मशीनों के चलाने में नहीं किया जा सका जब तक उसका उपयोग प्रकाश और पङ्खे के प्रयोजन से नहीं किया जा सका जब तक उस विषय का ज्ञान न हो सका। वर्तमान समय में तो विद्युत का बहुत प्रकार से प्रयोग किया जा रहा है, जिससे समय, धन और परिश्रम की भी बचत होती है।

प्राण तत्व के विषय में जो खोज हुई उसे प्राण विद्या अथवा प्राण विज्ञान की संज्ञा दी गई। उसमें जिन विधियों का प्रयोग किया गया, उनकी मुख्य क्रिया का नाम प्राणायाम हुआ। प्रणायाम का उद्देश्य श्वास के द्वारा प्राण तत्व का अधिक अंश में आकर्षित करना और उसे सत्ता में धारण करना है।

सामान्य रूप से भी प्राण तत्व का आकर्षण श्वास प्रश्वास के साथ होता रहता है, किन्तु उससे किसी प्रकार की विशेषता का प्राय: ग्रहण नहीं हो पाता। योगीजन प्राणायाम के अभ्यास से अपने शरीर को हल्का भारी करने, आकाश में उड़ने, मनोगति से गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाने आदि की सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं।

प्राणायाम के माध्यम से श्वास की गति में परिवर्तन किया जा सकता है। बाह्य श्वास के साथ प्राण का आकर्षण कर शरीर के रक्त संचार को इच्छानुसार तीव्र मन्द करना और दुर्बल अङ्गों को सबल बनाना भी इसके द्वारा सम्भव है। प्राणायाम क्रिया के द्वारा ऑक्सीजन की कमी सहज ही पूरी की जा सकती है।

बहुत से व्यक्तियों को देखते हैं कि वे शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होते हुए भी साहस के अभाव में कोई निर्णयात्मक कदम नहीं उठा पाते और कुछ कदम उठा कर भी वापस ले लेते हैं। वे विभिन्न

शंकाओं में पड़े रहकर अपनी अभीष्ट पूर्ति से वंचित रह जाते हैं। इसके विपरीत शरीर से दुर्बल मनुष्य भी साहस से काम लेकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। यह उनके शरीर और मन की शक्ति नहीं होती वरन् विशिष्ट व्यक्तित्व की ही शक्ति होती है, जिसे उन्हें प्राणतत्व द्वारा प्राप्त होती है।

यह प्राण शक्ति जितनी ही अधिक सबल होगी उतना ही अधिक हित साधन करेगी। जिनमें इसकी कमी हो वे प्राणायाम के अभ्यास द्वारा उसकी वृद्धि कर सकते है। उसके लिये उन्हें किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं होगी।

प्राणायाम का अभ्यास करने से शारीरिक आलस्य स्वतः दूर हो जाता है। मन में भी प्राण शक्ति की वृद्धि के कारण उल्लास भर जाता है। मस्तिष्क की शक्ति बहुत बढ़ जाती है। ' यदि निरन्तर अपनी साधना पर बढ़ते रहें तो प्रमाद, खिन्नता, विषाद जैसी विकृतियाँ शीघ्र नष्ट हो सकती है।

प्राणायाम की साधना सभी करते आये हैं। साधारण से उच्च व्यक्तित्व की ओर बढ़ना इसके द्वारा ही सम्भव है इसे बड़े-बड़े योगितों और महापुरुषों ने भी अपनी उन्नति का साधन माना है। भगवान कृष्ण जैसे विशिष्ट महापुरुष, जिनका यशोगान अवतार कोटि में होता है, नित्यप्रति प्राणायाम का अभ्यास करते थे. यह हमारे पुराणों, इतिहासों से सिद्ध है ।

प्राण विज्ञान की सहायता से उपार्जन की जाने वाली अन्तःचेतना मनुष्य को साधारण से विशेष बना देती है। कितने ही व्यक्ति इसके माध्यम से अपने व्यक्तित्व को प्रखर बनाने में समर्थ हो गये।

योगियों में जितनी भी विलक्षण शक्ति रही है, वह सब प्राण-साधना की ही शक्ति है। उनके द्वारा किये जाने वाले समस्त असम्भव समझे जाने वाले कार्य प्राणायाम के द्वारा ही सिद्ध होते रहे हैं।

आपने अनुभव किया होगा कि जिस कमरे में आग जलती है,उसका वातावरण अन्य कमरों की अपेक्षा गर्म रहता है। ईंधर जितनी परिधि में जलता है, यह बहुत छोटी होती है, किन्तु उसकी गर्मी, प्रकाश अथवा धुंआ दूर तक फैलता दिखाई देता है।

इसी प्रकार सूर्य धरती से बहुत दूर है। पृथिवी और उसके बीच में चन्द्रमा आ जाता है। चन्द्रमा में सूर्य के प्रकाश का ही प्रत्याभास होता है। इस प्रकार सूर्य चन्द्रमा को भी प्रकाशित करता है औरपृथिवी को भी ताप और प्रकाश प्रदान करता है। उसमें जो प्राण-ऊर्जा है, वह इतनी दूर से पृथिवी के प्राणियों को प्राप्त होती है।

सूर्यं ग्रहण पड़ता है, तब उसका प्रभाव संसार भर के प्राणियों पर होता हैं। मनुष्य. पशु, कीट, पतंग. पेड़, पौधा सभी उससे प्रभावित होते हैं। सन् १९८० का सूर्यं ग्रहण अपने प्रभावमें अत्यधिक प्रबल होने के कारण पाश्चात्य विद्वानों के लिये भी अन्वेषण-परीक्षण का विषय बन गया।

भारतीय गणकों, भौतिकी के विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों ने अपने अपने ढंग पर स्वीकार किया है कि सूर्थ ग्रहण का न्यूनाधिक विपरीत प्रभाव समस्त प्राणियोंपर पड़ सकता है। इस ग्रहण के विषय में अध्य-यनार्थ सैकड़ों विदेशी विद्वान् भारत में एकत्र हुए। सभी का यह मत था कि लाखों मील दूर से भी ग्रसित सूर्य का प्रभाव धरती के वाता-वरण पर अवश्य पड़ना चाहिये।

सूर्य-रश्मियों द्वारा प्राप्त प्राण ऊर्जा मनुष्यों के शरीर और मन दोनों को प्रभावित करती है। इसके कारण मनुष्यों में देव स्वभाव या दैत्य स्वभाव की स्थिति भी हो सकती है। उसके उचित उपयोग से लाभ और अनुचित उपयोग से हानि की संभावना भी कम नहीं रहती। यदि हम किसी शक्ति का विपरीत ढंगसे प्रयोग करें तो यह भी सम्भव

है कि वह हमारे लिये हानिकारक बन जाय। इसलिये किसी भी प्रयोग के लिये जानकारी अपेक्षित होती है।

अनेक योगी दिन-रात खुले वातावरण में रहकर धूप, वर्षा, शीत समान रूप से सहन करते हैं। उन्हें जानकारी रहती है कि उस प्रकार रहने से शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। साधारण मनुष्य का उस प्रकार से रहना प्रायः कठिन ही है।

एक ऐसे ही योगी ने बताया था कि खुली धूप में रहने से शरीर में किसी प्रकार का व्यवधान प्रतीत नहीं होता। आरम्भ में धूप सहने में कुछ कठिनाई होती है किन्तु बाद में उसकी आदत पड़ जाती है। वर्षा और शीत में भी आदत ही विशेष रूप से स्थिरता बनाये रखती है।

इस प्रकार रहने से लाभ के विषय में पूछने पर उन्होंने बताया कि आकाशस्थ वायु मण्डल अमृत से सम्पन्न है। धूप, वर्षा और शीत के रूप में वही अमृत सदैव बरसता रहता है। किन्तु इसका अनुभव साधारण मनुष्यों को नहीं हो सकता, मुझे तो इससे लाभ ही हुआ है। में आज तक कभी किसी भी रोग से पीड़ित नहीं हुआ। क्योंकि जब वाह्य विद्युत् शरीर की भीतरी विद्युत से मिलती है, तब दुहरी शक्ति प्रदान करती है। उसके कारण योगाभ्यास में मन लगा रहता है।

योग की बात में कितनी सत्यता थी, यह उनके स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट शरीर और तेजस्वी मुख को देखने से स्पष्ट हो रही थी। इससे यह भी अनुमान लगता था कि योगाभ्यास में बड़ी शक्ति है। उन्होंने अपने अभ्यास में मुख्य क्रिया प्राणायाम की ही अधिक महत्वपूर्ण बताई थी। उनका विश्वास था कि प्राणायाम केवल पर ही धूप-ताप, वर्षा शीत सब कुछ सहने में समर्थ हैं और उसी के द्वारा वायुमण्डल में विद्यमान अमृत का भी आकर्षण करने में सफल रहते हैं।

इससे यह तो स्पष्ट है ही कि योग-क्रियाओं में प्राणायाम का महत्व सर्वाधिक है। उसके अभ्यास से हम अपने शरीर को इस योग्य बना सकते हैं कि बाह्य वातावरण में विद्यमान ऊर्जा का आकर्षण कर उसे शरीर में सहज रूप से धारण कर सकें और समय-समय पर उसका प्रयोग अपेक्षित कार्यों में करते रह सकें।

प्राणायाम में श्वास की गति को सामान्य से असमान्य बनाने की क्षमता है। इसके द्वारा घर्षण का असामान्य क्रम उत्पन्न हो सकता है। घर्षण की क्रिया वस्तुतः बहुत महत्वपूर्ण होती है। जब तक दियासलाई का आविष्कार नही हुआ था, तब तक काष्ठ में काष्ठ को या लोहे से लोहे को रगड़ कर आग उत्पन्न की जाती थी। कैंची आदि पर धार रखने के लिये आज भी धातु या पाषाण के पहिये पर उसे रगड़ते हैं तब चिंगारी निकलती देखी जाती है।

घर्षण ऊर्जा उत्पन्न करने की एक क्रिया है। जब इसे प्राणायाम के अभ्यास द्वारा किया जाता है, तब उसके द्वारा साधक के शरीर में विशेष प्रकार की हलचलें उत्पन्न होती देखी जाती हैं। उनसे शरीर में विद्यमान प्रसुप्त चेतना का जागरण होता है। निरन्तर अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जागकर षट्चक्रों के भेदन में समर्थ होती है।

प्राणायाम का अभिप्राय श्वास की गति को तीव्र करना नहीं, वरन् उसमें दीर्घता और नियमितता लाना है। सामान्य स्थिति में लोग अनि-मित रूप से श्वास-प्रश्वास लेते हैं, उसके नियन्त्रण में प्राणायाम बहुत उपयोगी है। उसके द्वारा श्वास क्रमबद्ध और तालबद्ध होकर बाहर से प्राणांश की अधिक मात्रा के आकर्षण में समर्थ होता है।

प्राणायाम के द्वारा मनुष्य अपनी शक्तियों को बढ़ाकर जीवन तत्वों को स्थायी रखने में सफल होता है। इसके प्रभाव से वह निरोग और दीर्घजीवी हो सकता है। वृद्धावस्था की अशक्तता का उस पर कोई

प्रभाव नहीं पड़ता। यह साधना मनुष्य की भौतिक और पारलौकिक सभी प्रकार की उपलब्धियों की स्रोत सिद्ध हो सकती है। वस्तुतः प्राण-याम का अभ्यास ही प्राण की साधना है, जिसका अभ्यास निरन्तर करते रहने से मनुष्यत्व से ऊपर उठ कर देवत्व प्राप्त करता और सिद्ध पुरुष बन जाता है।

ध्यान द्वारा मानसिक शांति

मनुष्य जीवन की समस्त प्रवृत्तियाँ सुख शान्ति की खोज के लिये ही होती हैं। दिन रात की दौड़ धूप का एक मात्र इद्देश्य यह होता है कि मनुष्य शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करे। कितने भी साँसारिक पदार्थों का संग्रह वह करता हैं। उनमें वह वही झलक देखने का आकाँक्षी रहता है। लोक में धन, ऐश्वर्य, मकान, जायदाद, सन्तान और नाना प्रकार के विषय व भोगों में उसे सुख प्रतीत होता है। इसलिए वह उनके पीछे मतवाला हो जाता है और जान की बाजी लगाकर भी इस होड़ में आगे बढ़ना चाहता है। सांसारिक उपलब्धियों के लिए वह अपनी मूल्यवान सम्पत्ति—मन, बुद्धि और आत्मा के बलिदान की परवाह नहीं करता, परन्तु अपने लम्बे जीवन के अन्त में वह अनुभव करता है कि प्रकृति चञ्चल है, उससे सम्बन्धित सभी वस्तुएं नष्ट होने वाली और अस्थायी हैं। जो स्वयं अपना अस्तित्व बनाये रखने में असमर्थ है, वह किसी को भी स्थायी शान्ति प्रदान

करने की स्थिति में कैसे हो सकती है ? उससे यह आशा करना व्यर्थ ही है।

मनुष्य विषय भोगों के लिये छटपटाता है, उनके लिए लाख प्रयत्न करता है। कुछ क्षणों के लिये उनमें सुख की अनुभूति भी होती है। वह इस आशा से उनमें लिप्त रहता है कि इस से ऐसा सुख मिलेगा जिससे मेरा जीवन सफल हो जाय, परन्तु उसे निराशा हाथ लगती है। मृग की तरह कस्तूरी की खोजमें वह वन-वन भटकता है परन्तु वास्तविकता से दूर रहता हैं। यह वह नहीं जानता कि इन प्रवृत्तियों से वह तमोगुण के क्षेत्र में प्रवेश करता है। तमोगुण को गले लगा कर वह प्रकाश के दर्शन करना चाहता है। वह यह नहीं जानता कि तमोगुण विष्ठा के समान है। इनसे प्रीति करके वह दुर्गन्ध को ही निमन्त्रण देता है। निरन्तर इसके सान्निध्य में रहने से दम घुटना स्वाभाविक है। अतः यह घुटने उसे मृत्युपथ की ओर अग्रसर करती हैं। वह जीवित ही मृत दिखाई देता है। उसके जीवन में कोई प्रफुल्लित करने वाला तत्व दिखाई नहीं देता, उसे चारों ओर अन्धकार और निराशा ही के दर्शन होते हैं। कारण स्पष्ट हैं। उसने अपने सुख का साधन उन वस्तुओं को चुना है जिनमें स्वयं में स्थायित्व नहीं है।

हमारे शास्त्र इस तथ्य का सशक्त शब्दों में समर्थन करते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य से उनकी पत्नी मैत्रेयीं ने पूछा—'भगवन। यदि यह धन से सम्पन्न सारी पृथ्वी मेरी हो जाय तो क्या मैं उससे अमर हो सकती हूँ अथवा नहीं ? याज्ञवल्क्य ने कहा 'नहीं, भोग सामग्रियों से सम्पन्न मनुष्यों का जैसा जीवन होता है, वैसा ही तेरा भीं जीवन हो जाएगा। धन से अमरत्व की तो आशा है ही नहीं। कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता उपाख्यान में यमराज नचिकेता को समस्त प्रकार का धन सम्पत्ति और अनन्त काल तक जीने के

साधनों का लोभ देते हैं परन्तु नचिकेता उत्तर देते हैं कि भोग क्षण भंगुर हैं, भोग मनुष्य के अन्तःकरण सहित सम्पूर्ण इन्द्रियों का जो तेज है, उसको क्षीण कर डालते है। जो मूर्ख ब्राह्य भोगों का अनुसरण करते हैं, वे सर्वत्र फैले हुए मृत्यु के बन्धन में पड़ते हैं। किन्तु बुद्धिमान मनुष्य नित्य अमर पद को विवेक द्वारा जानकर इस जगत में अनित्य भोगो में से किसी को नहीं चाहते अर्थात् उनसे आसक्त नहीं होते।" धम्म पद १८६-१८७ में राजा मान्धाता ने कहा है 'कर्षापंण' नाम महामूल्यवान सिक्के की यदि वर्षा होने लगे तो भी काम वासना की तृप्ति नहीं होती और स्वर्गीय सुख मिलने पर भी कामी पुरुष की कामेच्छा पूरी नहीं होती।" म, भा,, आ ६२-४५ के अनुसार राजा ययाति ने अपने यूवा पुत्र का योवन लेकर लम्बे समय तक बिषयों के भोग का अपना अनुभव लिखा है "सुखों के उपभोग से विषय वासना की तृप्ति तो होती नहीं किन्तु विषय वासना दिनों दिन उसी प्रकार बढ़ती जाती है जैसे अग्नि की ज्वाला हवन पदार्थों से बढ़ती जाती है। विष्णु पुराण का आदेश है कि जीव जितना ही विषय में सुख में चित्त को लगाता है उतना ही उसके हृदय में दुःख का काँटा चुभता हैं। गीता भी कहती है, विषय के साथ इन्द्रियों के स्पर्श होने से जो सुख होता हैं, यह सब दुःख का ही देने वाला है।

अतः विज्ञजनों का सन्देश है कि विषय भोगों में सच्ची सुख शान्ति असम्भव है क्यों कि यह मलिनता का रूप है और जिस तरह सूर्य का प्रतिविम्व स्वच्छ जल में स्पष्ट दिखाई देता हैं और मलिन में धुँधला सा हो जाता है, उसी तरह से विषयों की दुर्गन्ध और मलिनता में सदैव मस्तिष्क में धुँधलापन ही रहेगा।

जीव को स्थाई आनन्द की प्राप्ति की छटपटाहट तो रहती है परन्तु साँसारिक ऐश्वर्यों के भ्रम जाल में पड़कर वह भटक जाता है।

इसलिए चारों और उसे निराशा का अन्धकार दिखाई देता हैं । वह भूल जाता है कि वास्तव में आनन्द उस वस्तु में हैं जो स्वयं कभी नष्ट नहीं होती ।

एक तरफ हम योरोप के एक बहुत बड़े धनी को कुछ वैयक्तिक कारणों से घोर मानसिक अशान्ति में डूबा हुआ और अन्त में होटल के एक कमरे में आत्महत्या करते पाते हैं, और दूसरी तरफ अपने देश के साधारण वृद्धा या वृद्धाको, जो अकिंचन अवस्था में पड़ी है और जिसके चारों तरफ भौतिक दृष्टि से अभाव और निराशा ही है, प्रसन्न चित्त से जीवन के अन्तिम दिन काटते देखते है । इस भेद का कारण यही है कि प्रथम प्रकार के मनुष्य को अपने स्वत्व और संसार के विषय में जो ज्ञान है वह बहुत सीमित है और उसे जीवन के थोड़े वर्षों के बाद अन्धकार ही अन्धकार जान पड़ता है । इसलिए किसी भी असहनीय कष्ट या परिस्थिति के आते ही उसका मानसिक सन्तुलन अस्त व्यस्त हो जाता है । पर दूसरी श्रेणी के व्यक्ति को वर्तमान समय के घोर अभावों के बीच रहते हुए भी दूर एक ज्योति दिखाई पड़ती रहती है । कठिन से कठिन स्थिति में भी उसमें एक आत्म विश्बास बना रहता है कि जिस देवता या भगवान की वह पूजा करता हैं, वह संतुष्ट होने पर अवश्य उसकी सहायता करेगा और इस समय नहीं तो आगामी जीवन मैं वह अपनेधर्माचरण का फल अवश्य प्राप्त करेगा । इस आधार के बल से वह कैसी भी कठिन परीक्षा में सन्तुलन और शान्ति को बनाये रहता हैं ।

इस समस्या का विश्लेषण करते हुए भारत के मनोविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् श्री राधाकमल मुकर्जी ने स्पष्ट किया है कि 'वर्तमान भौतिक उन्नति तथा वैज्ञानिक बुद्धि ने मनुष्य को आन्तरिक शान्ति नहीं दी, वरन्उसको आध्यात्मिक दृष्टि से खोखला कर दिया । इसी का परिणाम है कि जहाँ संसार के प्रगतिशील राष्ट्र बड़े-बड़े विश्व युद्धों की

तैयारी करते रहते हैं, वहाँ दूसरी ओर करोड़ों सर्वसाधारण भारी मानसिक असन्तोष और विक्षिप्तता का अनुभव करते रहते हैं। योरोप के सबसे बड़े मनोविज्ञान ज्ञाता डा० फ्रायड ने इस प्रकार की मानव की दयनीय अवस्था को हटाने का कोई मार्ग नहीं बताया है। उनके मतानुसार यह मानव का दुर्भाग्य ही है जिससे वह किसी प्रकार मुक्त नहीं हो सकता। भौतिक सभ्यता का विकास और मानसिक रोगों की वृद्धि एक दूसरे के सहगामी हैं।'

योरोप और उससे भी बढ़कर अमरीका के निवासियों की यह मानसिक दुर्गति आध्यात्मिक और भक्ति तत्व के अभाव के कारण ही उत्पन्न हुई है। एक तरफ वे पचास और सो मन्जिल के गगनचुम्बी मकानों में रहते हैं, प्रति घण्टा हजार मील चलने वाले और एक साथ पाँच सौ सवारियों को ले जाने वाले अद्‌भुत वायुयानों में यात्रा करते हैं और दूसरी ओर उनको इस बात का कुछ भी भरोसा नहीं कि यह अपार माया उनके जीवन काल तक भी स्थिर रह सकेगी और वे अपने परिश्रम का फल उपभोग कर सकेंगे। इस परिस्थित में उनके ऊपर एक ऐसी निराशावादिता का भाव सवार हो जाता है जिससे बाहर अनेक रङ्गरेलियाँ होते हुए भी उनका जीवन नीरस हो जाता है और जरा से कारण पर भी उनकी मानसिक स्थिति अस्तव्यस्त हो जाती है। यही कारण है कि सबसे अधिक वैज्ञानिक प्रगति वाले अमरीका में ही आत्महत्या करने वालों की संख्या सबसे अधिक है। इस निराशावादिता का समाधान भौतिक विज्ञान से नहीं हो सकता, इसका स्पष्टीकरण करते हुए श्री मुकर्जी ने लिखा है—

'प्रत्येक मनुष्य के भीतर वह तत्व उपस्थित है जो अपार शक्ति, ज्ञान और आनन्द का स्रोत है। इसका साक्षात्कार करने के लिए भी अनेक प्रकार की उपासनाओं और साधनाओं का अवलम्बन लिया जाता है। वेदान्त दर्शन के अनुसार सत्य मनुष्य की अन्तरात्मा में है। मनुष्य

के आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति बाहर से भीतर की ओर होती है। जब मन विषयोन्मुखी रहता है तब तक वह अपने स्वरूप को विषयों तक ही सीमित अनुभव कर सकता है।'

उपासना का मुख्य उद्देश्य यही है कि वह मनुष्य की इस सीमितता को हटाकर उसका प्रवेश उस आध्यात्मिकता में कराती है जो असीम और अनन्त है। जैसे-जैसे मनुष्य की प्रगति होती जाती है उसका असन्तोष और निराशा का भाव मिटकर एक अभूतपूर्व सन्तोष और स्थैर्य के भाव का उदय होता चला जाता है। उपासना द्वारा मनुष्य की अन्तरात्मा में छुपा हुआ देव भाव सिनेमा की फिल्म की तरह उसके सांसारिक जीवन के पर्दे पर प्रक्षिप्त होकर उसे एक नया प्रकाश, नई आशा, नया दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो अन्त में एक अलौकिक आनन्द के रूप में प्रकट होने लगता है। तब मनुष्य को विश्वास होने लग जाता है कि सच्चा सुख, सन्तोष, शान्ति, अन्तरात्मा में है। बाहरी उन्नति और तड़क-भड़क तो अग्नि में घी की आहुति की तरह लालसा और असन्तोष की ज्वाला को भड़काने का काम ही कर सकती है। इस स्थिति से छुटकारा पाने का मार्ग भौतिक प्रगति और विज्ञान नहीं दे सकता वरन् इसका मार्ग दर्शन अध्यात्म विज्ञान और उस पर आधारित उपासना पद्धति से ही हो सकना सम्भव है।

इस अकाट्य तथ्य को सभी विवेकशील व्यक्ति स्वीकार करते हैं कि मानसिक शांति और सन्तोष धन सम्पत्ति, वैभव, ऐश्वर्य, पद, सम्मान और किसी प्रकार के भी भौतिक विकास से प्राप्त होना सम्भव नहीं है। उसकी उपलब्धि तो आध्यात्मिक उत्कर्ष से ही हो सकती है। पूजा, पाठ, जप, कीर्तन; प्राणायाम और ध्यान, आदि के अनेकों उपाय भारतीय ऋषि, मुनियों ने अपनी अनुभूतियों के आधार पर हमारे सामने रखे हैं। उनमें से सभी का अपना-अपना प्रभाव है। किसी को भी

उपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु मन की स्थिरता, नियन्त्रण और मानसिक शान्ति के लिए श्वास-प्रश्वास का ध्यान सबसे सरल और प्रभावशाली है। अन्य ध्यान विधियों में कुछ जटिलता हो सकती है परन्तु इसमें जटिलता नाम का नितान्त अभाव है। सरलता, स्वाभाविकता और सरसता इसकी विक्षेषताएँ है। अन्य विधियों से ध्यान के विषय मैं दीर्घकालीन अभ्यास की अपेक्षा है। इसके थोड़े श्रम से ही ध्यान में प्रवेश सम्भव है।

एकता घन्टे तक सरलता पूर्वक ध्यान में बैठने पर विशे अनुभव होने लगते है। तीन घन्टे की बै ठक से ही उच्चतम आध्य..त्मक विकास की सम्भावनाओं के द्वार खुलने लगते हैं। ध्यान श्वास की गति पर रहता है जो धीरे-धीरे शून्य की ओर अग्रसर होने लगती है। मन का लय और अभाव होने की भी अनुभूति होने लगती है। गर्मी के मौसम जैसे पेड़ों की शींतल वायु शरीर को स्पर्श करने पर आनन्ददायक प्रतीत होती है, वैसे ही प्रत्येक श्वास शांति और आनन्द का सन्देश ही नहीं स्पर्श का अनुभव कराती है। ऐसा लगता है जैसे श्वास के आवागमन से शान्ति की लहरें चारों ओर प्रवाहित हो रही जो सारे अन्तः क्षेत्र में फैल जाती है। साधक आनन्द के समुद्र से गोते, लगाता रहता है। अभ्यास से यह स्थिति स्थाई रूप धरण कर लेती है।

———

ध्यान से मन पर विजय

सिद्ध के लिए मन की एकाग्रता आवश्यक है। मन की चंचलता सहज स्वभाव है। इधर-उधर भागने में उसे आनन्द आता है। किसी के स्वभाव को बदलना बहुत कठिन कार्य है। मन जब तक विषय वासनाओं में लिप्त रहता है. तब तक उसकी चंचलता में गति रहती है। परन्तु उनमें संयम का अभ्यास करने पर वह धीरे-धीरे स्थिर होने लगता है। कबीर ने माला द्वारा जप साधन का विरोध इस आशय से किया था कि यदि करका मनका फेरने के साथ-साथ मन निर्विषय होकर स्थिर नहीं होता है' तो उस साधना का क्या लाभ हैं? लाभ तो मन का मनका फेरने में ही है जिससे स्थिरता और सिद्धि हो।

कबीर की चेतावनी को लोग माला का विरोध मात्र मान लेते हैं। वास्तव में उन्होंने मन की एकाग्रता की ओर विशेष ध्यान देने की ओर प्रेरित किया है। साधारणतः लोग नहीं जानते कि मन संसार की महानतम शक्ति है। संसार के सभी दृश्य चमत्कार इसी की एकाग्रता का परिणाम है। यदि इसका उचित मूल्यांकन किया जाता तो धन लाभ के लिए कामुक व भ्रष्ट साहित्य का प्रकाशन अश्लीलता के प्रसार के लिए कामुक चलचित्रों का निर्माण, चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार, बेईमानी, मिलाबट जैसे कुकृत्य न होते रहते और मानव इसी गोरखधन्धे में घूमता रहकर अपने मूल्यवान जीवन को नष्ट न कर देता।

मन का मूल्यांकन

मन का उचित मूल्यांकन हमारे शास्त्रों ने किया है। यजुर्वेद १७।२५ में मनन शक्ति से संसार की उत्पत्ति बताई गयी है। कहा है

'सूय उत्पादक सर्वधारक ईश्वर ने मनन शक्ति से निश्चय ही जब जल को तथा इन दोनों बने हुए द्युलोंक तथा पृथ्वी लोक उत्पन्न किया तब ही इन दोनों के अन्तः प्रवेश को भी दृढ़ किया । अनन्तर उत्कृष्ट द्यावा पृथ्वी विस्तार को प्राप्त हुई ।" यजुर्वेद के तृतीय अध्याय के ५४ मन्त्र से प्रार्थना है कि "पुनः वह मगन शक्ति हमको उत्कर्स के लिए,बल के लिए सञ्जीवन के लिए और चिरकाल पर्यन्त परमात्मा के दर्शन के लिए भली भाँति प्राप्ति हो ।" आगे ५५ वें मन्त्र में प्रार्थना है कि "हे विद्या दान से पालन करने वाले महानुभावों । आप जो देवत्व गुणयुक्त श्रेष्ठ विद्वान् हैं, हमें पुनः मनन शक्ति प्रदान करें जिससे हमें सत्य भाषण आदि व्रतों से युक्त जीवन बना सकें ।" यदि हम अपनी मनन शक्ति को जीवन में सत्य व्रतों को धारण करने मैं लगा दें तो काम, क्रोध लोभ, मोह मद, मत्सर, चिन्ता, कलह, क्लेश, दुःख, ईर्ष्या, द्वेष-राग आदि हमारे शत्रु जो हमें दिन रात जलाते रहते हैं, अपने प्रतिकूल वातावरण देखकर अनुकूल वातावरण में जाने के लिए उत्सुक रहेंगे और उनके छोड़ने पर हमारे ऊपर निरन्तर सुख शान्ति एवं आनन्द की वर्षा होती रहेगी ।

उपनिषद् भी इस सम्बन्ध में मौन नहीं है । बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है कि "वह मन से ही देखता है और मन से ही सुनता है ।" (इसलिए कह देते है—मेरा मन अन्यत्र था, इसलिए मैंने नहीं सुना) मन अन्तरिक्ष लोक है, मन यजुर्बेद है, मन पितृगण है, मन ही पिता है, जो कुछ जिज्ञासा के योग्य है, वह मन का रूप है। इस मन का द्युलोक शरीर है, ज्योतिर्मय वह आदित्य है । जनक के यज्ञ में याज्ञवल्क्य और अश्वल के संवाद में याज्ञवल्क्य ने कहा "ब्रह्मा यज्ञ का मन ही है और जो मन हैं, वही यह चन्द्रमा है, जब ब्रह्मा है और वह मुक्ति है और वह अति मुक्ति हैं ।" इसी संवाद में आगे कहा है "मन ही देवता है । मन अनन्त है, अतः उस मन से यज्ञमान अनन्त लोक भी जीत लेता हैं ।" मन ज्याति (सङ्कल्प विकल्प का साधन) है ।

गीता १०।१२ में भगवान् ने कहा है "इन्द्रियों में मन मैं हूँ। प्रश्नोपनिषद् २।२ में भी मन को देवता कहा है। छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार जी ने नारद जी को उपदेश देते हुए कहा "मन ही आत्मा है, मन ही लोक है और मन ही ब्रह्म है। तुम मन की उपासना करो वह जो कि मन की 'यह ब्रह्म है इस प्रकार उपासना है, उसकी जहाँ तक मन की गति है, वहाँ तक स्वेच्छागति हो जाती है।' मुक्तिकोपनिषद में कहा हैं "सहस्रों अंकुर त्वचा पत्ते शाखा एवं फल फूल से युक्त इस संसार वृक्ष का यह मन ही मूल है। यह निश्चित हुआ और वह मन सङ्कल्प रूप है। सङ्कल्प को निवृत्त करके उस मनस्तत्व को सुखा डालो जिसने यह संसार वृक्ष भी निराश होकर सूख जाए।" तैत्तिरियोपनिषद् में भी मन को ब्रह्म कहा है और कहा है कि सचमुच मन से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं उत्पन्न होकर मन से ही जीते हैं। तथा इस लोक से प्रयाण करते हुए (अन्त में) मन में ही सब प्रकार से प्रविष्ट हो जाते हैं।"

स्वामी विवेकानन्द का वचन हैं "मन की दुर्बलता सब प्रकार के बन्धनों की जड़ है। जब तक हमारा मन अशक्त नहीं हुआ है, तब तक दुःखों की क्या मजाल है जो वह हमारी ओर आँख उठाकर भी देखें। शक्ति ही हमारा जीवन और दुर्बलता ही मृत्यु है। मनोबल ही सुख सर्वस्व, चिरन्तन जीवन और अमृतत्व तथा दुर्बलता ही रोग समूह,दुःख और मृत्यु है।

"मन इन्द्रियाँ स्वाधीन कर, तज द्वेष दे तज राग दे।
सुख शांति का यह मार्ग है, श्रुति सन्त कहते हैं सभी ॥

मैत्रेयी उपनिषद् ५।७ में कहा है 'पर शांत मन वाला पुरुष जब आत्मा में स्थित लाभ करता है, तब उसे अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती

है।" महोपनिषद् "अमृत के पान करने से तथा लक्ष्मी के आलिङ्गन से वैसा सुख प्राप्त नही होता जैसा सुख मनुष्य मन की शांति से प्राप्तकरता है।" कबीर—"जग में बैरी कोई नहीं जो मन शीतल होय।" मनु० ४।१६०" जो दूसरों की (बाह्य वस्तुओं की) अधीनता में हैं, वह सब दु:ख का चिन्तन न करना ही दु:ख निवारण की अचूक औषधि है।' भर्तृहरि 'मन के प्रसन्न होने पर क्या पवित्रता और क्या अमीरी दोनों समान है।" प्रसिद्ध यूनानी तत्ववेत्ता प्लेटों का कहना है कि "शारीरिक अर्थात् बाह्य आधिभौतिक सुख की अपेक्षा मन का सुख श्रेष्ठ है।"

इसलिए शास्त्रों ने मन के सम्बन्ध में अत्यन्त सावधान रहने की प्रेरणा दी है। उसे अपने नियन्त्रण में रहने का आदेश दिया है। हमारे ऋषि भली प्रकार जानते थे कि मन की शक्तियों को नष्ट करना अपने जीवन का नाश करना है और उसे एक निश्चित दिशा में व्यवस्थापूर्वक लगाना सफलता की कुंजी है। आध्यात्मिक भाषा में इसे मन का निग्रह कहते हैं। प्रत्येक कार्य कीं सफलता के लिए मनोनिग्रह आवश्यक है क्योंकि अनुभव बताता है कि मन के निग्रह के द्वारा इन्द्रियों का निग्रह करना सब साधनों का मूल है। यह सुख, शांति और आनन्द के भण्डार खोल देता है। यही ब्रह्म दर्शन की कुंजी है।

विज्ञान को दृष्टि में

वैज्ञानिकों ने भी मन की शक्ति की नाप तौल करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार मन भौतिक शरीर की चेतन शक्ति है—आइन्स्टीन के शक्ति सिद्धांत के अनुसार कुछ भार वाले एक परमाणु में ही प्रकाश की गति × प्रकाश की गति अर्थात् १८६००० × १८६००० कैलोरी शक्ति उत्पन्न होगी। १ पौण्ड पदार्थ की शक्ति १४ लाख टन कोयला जलाने से जितनी शक्ति मिलेगी इतनी होगी। यद्यपि

पदार्थ को पूरी तरह शक्ति में बदलना सम्भव नहीं हुआ तथापि यदि इस शक्ति को पूरी तरह शक्ति में बदलना सम्भव होता तो एक पोण्ड कोयले में जितना द्रव्य होता है, उसे शक्ति में वदल देने से सम्पूर्ण अमेरिका के लिए १ माह तक के लिए बिजली तैयार हो जाती है। मन शरीर के द्रव्य की विद्युत शक्ति है। मन की एकाग्रता जितनी बढ़ेगी शक्ति उतनी ही तीव्र होगी। यदि सम्पूर्ण शरीर को इस शक्ति में बदला जा सके तो १२० पौण्ड भार वाले शरीर की विद्युत् शक्ति अर्थात् मन की सामर्थ्य इतनी अधिक होगी कि वह पूरे अमरीका को लगातार १० वर्ष तक विद्युत देता रह सके। इस प्रचण्ड क्षमता से ही भारतीय योगी ऋषि, महर्षि शून्य आकाश में स्फोट किया करते थे और वे किसी को एक अक्षर का उपदेश दिए बिना अपनी इच्छानुसार अपने सङ्कल्प बल से समस्त भूमण्डल की मानवीय समस्याओं का सञ्चालन और नियन्त्रण किया करते थे। शेर और गाय को एक ही घाट का पानी पिला देने की प्रचण्ड क्षमता इसी शक्ति की थी। मन को ही वेद में "ज्योतिषां ज्योति" अर्थात् प्रकाश को भी महाप्रकाश कहा है। डॉ० बैनेटर्न ने उसे एक महान विद्युत शक्ति (माइण्ड इज ए ग्रेट इलेक्ट्रिकल फोर्स) से सम्बोधित किया है।

ऊपर मन की शक्तियों का जो वर्णन किया गया है, वह एकाग्र हुए मन की शक्ति का परिचय है। मन की शक्तियों को विकसित करने के लिए उसका एकाग्र होना आवश्यक है। एकाग्र मन के लाभों का वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार है:—

एकाग्रता का परिणाम

ऋग्वेद—"हे मनुष्य ! यदि तू मन को स्थिर करने में समर्थ हो जाए तो तू स्वयं ही समस्त बाधाओं और विपत्तियों पर विजय पा

सकता है।" श्री विजय कृष्ण गोस्वामी "मनोनिग्रह सबसे बड़ी विद्या है। यही सब सुखों का मूल हैं।" महोपनिषद् "निग्रह किया हुआ मन अनायास प्राप्त हुए थोड़े से भी भोग को जो विस्तार को नहीं प्राप्त हुआ है, क्लेश दायक होने के कारण बहुत अधिक समझता है।' मनु० २।१ 'स्मृतिकार ऋषि अपने मन को एकाग्र करके ही धर्म अधर्म बतलाया करते थे।" गीता ३।६।७ "जो मूढ़ (हाथ पैर आदि) कर्म इन्द्रियों को रोककर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन किया करता है, उसे मिथ्याचारी तथा दम्भी कहते हैं परन्तु हे अर्जुन ! उसकी योग्यता विशेष अर्थात् श्रेष्ठ है कि जो मन से इन्द्रियों का नियन्त्रण करके केवल कर्मइन्द्रियों के द्वारा अनासक्त बुद्धि से कर्मयोग का आचरण करता है।'

सन्त तुकाराम : 'ईश्वर के पास कुछ मोक्ष की गठरी नहीं धरी है कि वह किसी के हाथ में दे दें। यहाँ तो इन्द्रियों को जीतना और मन को निर्विषय करना ही मुख्य उपाय है।" भागवत में जड़भरत ने राजा रहुगण को उपदेश देते हुए कहा "विषय आसक्त मन जीव को संसार सङ्कट में डालने वाला है और विषयहीन होने पर वही उसे शांतिमय मोक्ष पद को प्राप्त करा देता है।" योगवशिष्ठ "सबसे उत्तम परम सम्पदा का अर्थ अपने मन के निग्रह सें सिद्ध होता है। अपने सन का निग्रह करना ही बीज है जो चेतन रूपी क्षेत्र से प्रफुल्लित होकर फलदायक होता है। सम्पूर्ण पृथ्वी की शिला मात्र बड़ी बड़ी मणि भी मन के समान नही है।"

यजुर्वेद ११।१ "योगैश्वर्य का सम्पादक प्रथम मन को एकाग्र करत हुआ बुद्धिन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को तत्वज्ञान के लिए आत्म ज्योति क साक्षात्कार करके पार्थिव पदार्थों से ऊपर उठता है। "११।२ (पूर्वोक्त) योगी विद्वान् की अध्यक्षता में हम भी एकाग्र मन से विशेष सुख लाभ

के लिए अपनी सामर्थ्य से (आत्म ज्योति को) धारण करें" इसके विपरीत कठोपनिषद् में यम नचिकेता से कहते हैं 'जिसके मन इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं, जिसका मन चंचल है, वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।" १।२।२४

मन की पवित्रता, एकाग्रता, स्थिरता और निग्रह के लिए श्वास प्रश्वास ध्यान सरलतम साधना है क्योंकि इसमें केवल श्वास और प्रश्वास की गति को देखना मात्र है। निर्देशित विधि द्वारा अभ्यास करने पर श्वास की गति धीरे-धीरे बहुत ही धीमी हो जाती है। कभी कभी ऐसा अनुभव होता है जैसे श्वास बन्द होने जा रही हैं अथवा हो रही है। कुम्भक जैसी स्थिति भी हो सकती है। यह सफलता के लक्षण हैं। साधक जब और आगे बढ़ता है तो मन का ठहराव होने लगता है। ऐसा अनुभव होता है जैसे मन का लय हो गया है मन रहा ही नहीं। यह स्थिति आग पर मन गहरे में प्रवेश करता है और शांति के समुद्र में गोते लगाने लगता है। भौतिक सुख दु:ख उसे प्रभावित नहीं करते। वह हर स्थिति में पर्वत की तरह अडिग और स्थिर रहता है। सांसारिक परिस्थितियाँ उसे अशांत नहीं कर सकतीं जनक जैसी उच्च स्थिति प्राप्त हो सकती है।

ध्यान के सफल साधक को स्थित प्रज्ञ कह दें तो अनुचित न होगा उसके सभी बन्धन टूट जाते हैं। वह मरण की प्रतीक्षा न करके इसी जीवन में मोक्ष या अधिकारी हो जाता है। उसका शांत मन यह सिद्ध करता हैं कि उसके जीवन की सभी समस्याओं का समाधान हो गया है। जीवन उसके सामने कोई समस्या प्रस्तुत नहीं करता वरन् हर क्षण आनन्द का क्षण रहता है। शङ्कर ने लोक कल्याण के लिए हलाहल विष का पान किया परन्तु वह कुछ भी दु:खी, चिन्तित और खिन्न नहीं हुए। उन्होंने इसे प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण किया। मीरा को विष दिया

गया तो वह अमृत समझकर पी गईं। विषैली परिस्थितियां हर एक के जीवन में आती है परन्तु जिस साधक ने ध्यान द्वारा मन को एकाग्र, स्थिर और शांत करके उस पर विजय प्राप्त कर ली है, वह उसे भगवान का अनुग्रह समझकर प्रसन्नता पूर्वक वरण करता है। जो साधक हर स्थिति में एक रस रह पाता है, समझना चाहिए कि उसी ने मनको जीत लिया है। मन व्यक्ति को विषयों की ओर नहीं ले जा सकता वरन् साधक के निर्देशानुसार एक कर्मचारी की तरह आज्ञा का पालन करता है। वह मानसिक शक्तियों का असाधारण विकास करके आत्मोत्थान की उच्चतम स्थिति तक पहुंच सकता हैं। उसके लिए इस जीवन में कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। वह मुक्त जीवन व्यतीत करता है। ध्यान साधक के लिए यह असम्भव नहीं, सहज है।

———

ध्यान से समाधि की ओर

योग दर्शन के समाधि पाद (१।४।१) में महर्षि पतंजलि ने समाधि की परिभाषा करते हुए लिखा है "वृत्तियों के क्षीण हो जाने से स्फटिक मणि के समान जब मन हो जाता है और वह ग्रहिता (आत्म) ग्रहण (अन्तःकरण और इन्द्रियाँ) तथा ग्राह्य (पंचभूत और उनके विषय) में स्थित होकर तदाकार हो जाता है तो यही सम्प्रज्ञात समाधि है। "जब मन में रजोगुण ही शेष रह जाता है। जब चित्त पवित्र और शुद्ध

हो जाता है तो उसके सामने जो पदार्थ रखा जाता है, वह वैसा ही दिखाई देता है। जब एकाग्र शुद्ध चित्त सतोगुणी वृत्तियों के सम्पर्क में आता है तब वह भी सात्विकता से ओत-प्रोत दृष्टिगोचर दिखाई देता है। इस तदाकार तन्मयता में जो स्थिति प्राप्त होती है, उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है।

समाधि शब्द का व्युत्पतिलभ्ल अर्थ है—विक्षेपो को दूर करके एकाग्र चित्त होना। जहाँ ध्यान और ध्येय वस्तु दोनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं। समाधि कहलाती हैं।

योगवासिष्ठ में समाधि का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

इमं गुण समाहारमनात्मत्वेन पश्यतः।
अन्तः शीतलता यस्य समाधिरिति॥

अर्थात्—जब हम इस गुण समूह को आत्मा से अलग देखकर अन्तः करण में शीतलता का अनुभव करते हैं, तब उस स्थिति का नाम ही समाधि है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार समझाया है—

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरात्मनोः।
ब्रह्मरायेव स्थितिर्या सा समाधि रभिधीयते॥

अर्थात्—जीवात्मा और परमात्मा जब साम्यावस्था में आ जाते हैं, तभी समाधि होती है।

यही बात स्कन्दपुराण में कही गई है।

यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्मा परमात्मनो।
सनष्ट सर्वं सङ्कल्पः समाधिरभिधीयते॥

परमात्मात्मनोर्यो ऽयमविभागः पतन्तपे।
स एक तु परो योगः सआसात्कथितत्सव॥

इनमें भी यही भाव दर्शाए हैं कि जिस स्थिति में विकारों से ओत-प्रोत सारे सङ्कल्प नष्ट हो जाते हैं और जीवात्मा और परमात्मा दोनों साम्यावस्था में आ जाते हैं, उसे ही समाधि कहते हैं।

गीता में साम्यावस्था प्राप्त साधक को ही स्थितप्रज्ञ, ब्रह्मभूत, जीवन मुक्त और समाधिस्थ कहा गया है। गीता (२।५४) में अर्जुन भगवान से समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ के लक्षण पूछते है। इस पर भगवान उत्तर देते हैं 'जब कोई व्यक्ति मन की समस्त वासनाओं को त्याग देता है और अपने आप में ही सन्तुष्ट हो जाता हैं, तब उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं (२।५५)।'' दुःख में जो दुःखी नहीं होता और सुख में आसक्त नहीं होता, जिसने क्रोध, भय, और प्रीति को छोड़ दिया है'' (५६) जिसका मन सब ओर से।निःतङ्ग हो जाता है और शुभाशुभ से प्रसन्नता और दुःख नहीं होता (५७), कछुए की तरह जब कोई व्यक्ति अपनी इन्द्रियों की विषयों से खींच लेता है (६८) तभी उसकी बुद्धि स्थिर मानी जाती है। यही समाधि रूप साधक के भी लक्षण हैं।

एक विद्वान् ने लिखा है 'उपासना और समाधि में केवल अन्तराय की मात्रा का भेव नहीं है, स्थिति का भेद नहीं है अर्थात् जिस समय बिना किसी अन्तराय, विघ्न और बाधा के साधक चित्त वृत्तियों को निरुद्ध करके दीर्घकाल तक एकासन पर बैठता है, उस समय वह समाधि की स्थिति में प्रविष्ट होता है।'

श्वास प्रश्वास ध्यान से साधक का क्रमिक विकास होता चलता है और समाधि के सारे द्वार खुलने का मार्ग प्रशस्त होने लगता है। ध्यान का जब अभ्यास बढ़ता है तो श्वास धीरे धीरे बहुत ही धीमी होती चलती है। ऐसा लगता है कि कुछ ही क्षणों में बन्द हो जायगी। ऐसा अनुभव होता है जैसे मन की सभी प्रकार की चञ्चलता, उछल कूद और गति स्थगित हो गई हैं और एक ठहराव सा आ गया है। मन इस प्रकार से स्थिर हो जाता है जिसमें तीव्र से तीव्र वायु भी किसी सांसा-

रिक विचार को भीतर आने नहीं देती। सभी वातावरण इतना संशोधित और शांत हो जाता है कि वह पवित्र स्थान सभी सांसानिक कर्मो, शब्दों विचारों और प्रकाश से शून्य सा हो जाता है।

साधारण मन कम्पित दशा मैं जीता है हर क्षण उसमें कम्पन होते रहते हैं। इस कम्पन के कारण ही विचार उसमें प्रविष्ट होते हैं। यह कम्पन ही अस्थिरता लाती है विचारों के प्रवेश के किए छिद्र बनाती है। जब यह कम्पन बन्द होती है तो इस निष्कम्प दशा में सभी ओर छिद्र बन्द हो जाते हैं। कोई भी विचार प्रवेश नहीं कर पाता। चारों ओर एक सुदृढ़ दीवार सी खड़ी हो जाती है। ध्यान से ऐसी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है।

मन जव स्थिर होता है तो एक अद्भुत शान्ति की लहरे चारों ओर प्रवाहित होती हैं। मन की उस शान्त स्थिति में कोई भी विचार प्रविष्ठ नहीं हो पाता। अशात और कम्पित मन में ही विचारों का कूड़ा करकट आता है। मन में जब अशांति और चिन्ता रहती है, तभी विचारों का एक अनन्त प्रवाह चलता है जो कभी रुकता प्रतीत नहीं होता। ध्यान से शरीर और मन शिथिल हो जाते है, तनाव और चिंताएं विनष्ट हो जाती हैं, कम्पन बन्द हो जाती है, गति रुक जाती है, अकम्प स्थिति आती हैं, विचारों के प्रवेश के सभी द्वार बन्द हो जाते है। अब निर्विचार स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह निर्विचार स्थिति ही समाधि का मार्ग प्रशस्ती करती है।

वास्तव में मन में जब जब कम्पन उत्पन होते हैं तभी द्वैत की अनुभूति होती है। मन की अकम्प दशा में द्वैत का अन्त हो जाता है। एक ही भासता हैं। निर्विचार से ही एकता की अनुभूति होती है। निर्विचार में दो दिखाई नहीं दे सकते हैं। एक ही एक दृष्टिगोंचर होता हैं। जब तक द्वेत रहता है, तब तक मन का भी अस्तित्व बना रहता है। जब एक हो जाता है, तो मन भी नहीं रह सकता। तब कबीर की

'उनमन रहनी' जैसी स्थिति हो जायगी। यह बिना मन के रहने की दशा है यह आनन्द की दशा है, शांति की दशा है।

इस शांति को आंदोलित करता है अहङ्कार अहङ्कार से मन में कम्पन्न उत्पन्न होते हैं. छिद्र बन जाते हैं, विचारों का निर्बाध गति से आगमन आरम्भ हो जाता है मैं की प्रनुभूति होती है, द्वैत स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगता है। अशांति और चिन्ताओं का साम्राज्य छा जाता है, नए पार्थिव संसार का निर्माण होता है, नई गाँठें बनने लगती हैं। सिकुड़न से अहङ्कार बढ़ता हैं। फैलाव से यह कम होता है। विराट् के अनुभव से अहङ्कार नष्ट होता है अहङ्कार एक प्रकार का संकुचन है। ब्रह्मभाव के विस्तार से यह दूर होती है। संकुचन को अहङ्कार को दूर करने के लिए अपने फैलाव क्षेत्र का विस्तार करना होगा, विराट् का अनुभव करना होगा। विराट् का अनुभव करने के लिए द्वैत का नाश करना होगा। एकता की अनुभूति होने पर अहङ्कार गल जाता हैं, 'मैं' का अन्त हो जाता है। जब तक यह 'मैं' नहीं मिटता तब तक प्रभु मिलन की आशा व्यर्थ है। मैं के मिटते ही प्रभु एक क्षण में सामने आ जाते हैं। वास्तव में वह ही हर क्षीण हर जगह प्रस्तुत हैं दर्शन देने के लिए। केबल एक 'मैं' का पर्दा हटाने की अपेक्षा हैं। यह दीवार हटी कि वह दिखाई दिए। कबीर ने भी यह कहा है कि जीवन भर उसे खोजता रहा तो वह न मिला। जब मिला तो मैंने अनुभव किया कि अब तो मैं मिट चुका हूँ। मिटने से ही वह मिलता है। जब तक 'में' हूँ तब तक वह नहीं रह सकता। 'मैं' के जाते ही वह आता है। अहङ्कार शून्यता से वह प्रकट होता है। यही समाधि का लक्षण है।

ध्यान से जब "उनमन रहती" की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो अहङ्कार का वहाँ रहना असम्भव हो जाता है। मन ही अहङ्कार के विभिन्न रूपों का सृजन करता है और कम्पित मन में यह निर्माण निरन्तर चलता रहता है। अकम्पन और शांत मन में अहङ्कार नहीं

पनप सकता। अतः अहङ्कार शून्यता की स्थिति की सम्भावना हो सकती है। ध्यान से इस सम्भावना के निकट पहुँचा जा सकता है और यह होता है। अहङ्कार शून्यता से जब 'मैं' मिटता है और एक ही शेष रहता है तो अखण्ड आनन्द और शांति की उपलब्धि होती है।

श्वास प्रश्वास ध्यान के निरन्तर अभ्यास से एकाग्रता आती है। जब साधना आगे बढ़ती है तो यह एकाग्रता और प्रगाढ़ होने लगती है और समय का भान नहीं होता। ध्यान में घण्टों बीत जाते हैं परन्तु ऐसा लगता है कि अभी कुछ समय पहले ही ध्यान पर बैठे थे। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब मन शांत और स्थिर होता है, वह गहरे से गहरे में प्रवेश करने की स्थिति में हो जाता है, शांति की लहरें चारों ओर प्रवाहित होती प्रतीत होती हैं और वह घण्टों शान्ति के गहन समुद्र में गोते लगाता रहता है। इस सिञ्चन से वह इतना स्तम्भित हो जाता है कि उसे समय का भी ज्ञान नहीं रहता। यह समय शून्यता ही समाधि की स्थिति है, जिसे ध्यान साधक अनुभव करता है। समय शून्यता में परमात्मा का बोध होता।

ध्यान के समय साक्षी भाव बना रहे तो निर्विचार स्थिति आने में देर नहीं लगती। निर्विचार स्थिति ही समाधि अवस्था लाने में सहयक होती है।

———

साधना विधि की प्रारम्भिक क्रियायें

(१) भस्त्रिका प्राणायाम

हठयोग प्रदीपिका (द्वितीय उपदेश) के अनुसार—

ऊर्वोरूपरि संस्थाप्य शुभे पादवले उभे।
पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपायप्रणाशनम् ॥५९
सम्यक्पद्मासनं बद्ध्वा, समग्रीवोदरं सुधीः।
मुखं संयम्य यत्नेन प्राणं घ्राणेन रेचयेत् ॥६०
यथा लगति हृत्कंठे कपालावधि सस्वनम्।
वेगेन पूरयेच्चापिहृत्पद्मावधि मारुतम् ॥६१
पुनर्विरेचत्तद्वत्पूरयेच्च पुनः पुनः।
यथैव लोकारेण भस्त्रा बेगेन चाल्यते ॥६२

दोनों पावों के तलुओं को दोनों जघाओं के ऊपर स्थापित करके बैठें तो यह सभी पापों का नाश करने वाला पद्मासन होता है । पहिले पद्मासन बाँधकर ग्रीवा और उदर को समान रखें तथा मुख का संयम करके नासिका के एक रन्ध्र से प्राण का रेचन करें । जैसे शब्द करता हुआ प्राण हृदय, कण्ठ ओर कपाल पर्यन्त लगे ओर फिर वेग पूर्बक हृदय कमल तक वायु को पूरित करें । तत्पश्चात् वायु का रेचन बार-बार वैसे ही करें,जैसे लोहार धौकनी को चलाता है ॥५९-६२॥

पद्मासन लगाकर बैठने के पश्चात् भस्त्रिका कुम्भक होता है। क्योंकि पद्मासन सभी पापों को नष्ट करने वाला है। इसीलिए ग्रन्थकार ने सम्यक् पद्मासन वद्ध्वा' कहकर पद्मासन को ठीक प्रकार से लगाने का उपदेश किया है।

तथैवस्वशरीरस्थ चालयेत्पवन धिया।
यदा श्रमाभवेद्देह तथा सूर्यैण पूरयेत् ॥६३
यथोदर भवेत्पर्णमनिलेन तथा लघु।
धारयेन्नासिकां मध्यतर्जनीभ्यां विना दृढ़म् ॥६४
विधित्कुम्भकं कृत्वा रेचयेदिडितानिलम्।
वातपित्त श्लेस्महर शरीराग्निविर्धनम् ॥६५

वैसे ही बुद्धिमान साधक अपने शरीर में विद्यमान वायु का चलन करे और जब श्रम जान पड़े तब सूर्य नाड़ी (पिंगला) से पूरक करे, मध्यमा और तर्जनी के अतिरिक्त अन्य तीनों अँगुलियों से नासिका को मध्य दृढ़ता पूर्वक पकडकर कुम्भक करे और बाँयी नासिका से रेचक करे। यह प्रयोग वात पित्त, कफ का नाक और जठराग्नि का वर्धक करने तथा कुण्डलिनी को जगाने वाला है। यह सुखदायक और हितकारक तथा ब्रह्मनाड़ी के मुख पर बिद्यमान कफादि को नष्ट करता है। जो गात्र नाड़ी के मध्य में समुद्भूत तींन ग्रन्थियों का भेदन करने वाला होने से भस्त्रासंज्ञक यह कुम्भक विशेष रूप से करना चाहिए॥६३-६७॥

जिस प्रकार वायु से उदर पूर्ण हो सके, उसी प्रकार अर्थात् यथाशक्ति सूर्यनाड़ी द्वारा पूर्ण करना चाहिए। पूरक के पश्चात् अँगूठा, अनामिका और कनिष्ठिका तीनों के द्वारा नासापुट को दृढ़तापूर्वक रोकता हुआ कुम्भक करे। उसमें मध्यमा और तर्जनी को न लगावें। फिर इड़ा नाड़ी से रेचक करना चाहिए।

वाम नासापुट को दाँये हाथ की अनामिका और कनिष्ठिका से रोक कर दाँये नासापुट से धोंकनी के समान वेग पूर्वक रेचक, पूरक करके अँगूठे के द्वारा दाँये नासापुट का अवरोध कर यथाशक्ति कुम्भक करे और फिर बाँये नासापुट से रेचक करे। तदनन्तर दाँये नासापुट को अंगुष्ठ से रोके और वामपुट से धोंकनी के समान जल्दी-जल्दी रेचक पूरक करे। जब उससे श्रम हो तब नासापुट से पूरक करके अनामिका और कनिष्ठिका से वामनासा को रोककर शक्ति भर कुम्भक कर दाँयी नासा से रेचन करे।

जिन साधकों को पद्मासन लगाकर अधिक देर तक बैठने में असुविधा हो, वे किसी भी सुविधाजनक आसन में बैठ सकते हैं।

भस्त्रिका प्राणायाम एक साथ दोनों नासिकाओं से भी किया जा सकता है। इसे कम से कम २७ बार करना चाहिए।

(२) अनुलोम-विलोम प्राणायाम

दाँयी नासिका को दाँये हाथ के अंगूठे से दबाकर बाँयी नासिका से श्वास को तीव्रगति से बाहर निकालें। फिर श्वास को जल्दी से अन्दर भरें, मध्यमा अनामिका अंगुलियों को मिलाकर बांयी नासिका को दबायें और दाँयी नासिका से शीघ्रतापूर्वक श्वास को बाहर निकाल दें इसके पश्चात दाँयी नासिका से ही श्वास भरें और बाँयी ओर से निकालें। इसी तरहसे दोनो नासिकाओं से रेचक पूर्वक करते रहें। इसे कम से कम २७ बार करें।

(३) सहित कुम्भक

दाँये हाथ के अँगूठे से दाँयी नासिका को बन्द करले ॐ का आठ बार मानसिक जप करें। जप करते हुए बाँयी नासिका से श्वास खींचें

अथवा पूरक करें। अनामिका (अँगूठे से चौथी अँगुली) और मध्यमा (अंगूठे से तीसरी अँगुली) से बांयी नासिका को बन्द करके ॐ का ३१ बार मानसिक जप करते हुए कुभक करें। इसके बाद ॐ का१६ बार मानसिक जप करते हुए दाँयी नासिका से श्वास छोड़ें अथवा रेचक करें। इसी तरह से दूसरी नासिका से भी किया जा सकता है।

यह कनिष्ठ कुम्भक कहलाता है। संख्या भेद से मध्यम और उत्तम कुम्भक होते हैं। मध्यम कुम्भक में पूरक १६ से, कुम्भक ६४ से और रेचक ३२ से करना है। अर्थात् ॐ का १६, ६४,३२ बार जप करके प्राणायाम करें। उत्तम कुम्भक में पूरक ३२ से, कुम्भक १२८ से और रेचक ६४ से करना चाहिए अर्थात् ॐ का ३२, १२ ८,६४ बार जप करके प्राणायाम करें।

श्वास को भीतर खींचते समय भावना करे कि श्वास के साथ विश्वव्यापी चैतन्य प्राणशक्ति मेरे भीतर प्रविष्ट हो रही है। कुम्भक करते समय यह भावना करें कि तेजस्वी प्राणशक्ति को भीतर खींचने से चारों ओर शक्ति का संचार हो रहा है और मैं शक्ति का पुञ्ज बनता जा रहा हूँ। रेचक करते समय भावना करें कि सतोगुणी शक्तियों के आगमन से मेरे पापों का विनाश हो रहा है और श्वास के साथ वे बाहर निकलते जा रहें हैं इन पवित्र भावनाओं के साथ किया गया प्राणायाम अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक रहता है। भावना की दृढ़ता पर इसका लाभ निर्भर करता है। आधुनिक मनोबिज्ञान ने इस तत्व को स्वीकार किया है।

साधना काल में इस प्राणायाम को २७ बार करना चाहिए। जिनका अभ्यास दृढ़ हो गया हो वे १०८ बार भी कर सकते है। साधना के आरम्भ से २७ बार न हो सके तो सुविधानुसार धीरे-धीरे ही बढ़ाना चाहिये।

इस प्राणायाम से शरीर में शक्ति, सक्रियता और स्फूर्ति बढ़ती है। चेहरे पर एक अनोखी चमक सी दृष्टिगोचर होती है। इन्द्रियां संयमित रहती हैं। मानसिक शक्ति बढ़ती है। ध्यान में एकाग्रता लाने में सहयोग मिलता है और ऊर्जा का विकास होता है।

(४) दीर्घ ओंकार ध्वनि

२७ बार दीर्घ प्रणव की ॐ ध्वनि उच्च स्वर से उच्चारण करना चाहिए। यह लम्बी ध्वनि मन को सांसारिक विषयों से मुक्त कर गंगा जल की भांति स्वच्छ और पावन कर देती है। भागवत में ओंकार के उच्चारण की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है—'दीर्घघण्टा-निनादवत्'

घन्टे पर चोटें मारने और छोड़ देने पर तक एक लम्बी ध्वनि का आभास होता रहता है। ऐसे ही एक पूरे श्वास में एकबार ओंकार का उच्चारण करना चाहिए।

ओंकार के इस उच्चारण की काकवाणी से भी संज्ञा दी जाती है। ऐसा अनुभव किया गया है कि कौआ जब कांव-कांव करता है तो गुदा तक शब्द का स्पन्दन होता है, उसी तरह आचार्यों का निर्देश है कि ओंकार का उच्चारण दीर्घ घण्टानाद की तरह तो होना ही चाहिए परन्तु उसके शब्दों का सपन्दन मूलाधार चक्र से उठना चाहिए। इस उच्चारण में साधक की परम श्रद्धा होनी चाहिए। जैसे भगवान का कीर्तन करते समय साधक मस्ती में झूमता है, वैसे ही यह उच्चारण मस्ती से ओत-प्रोत हो और श्रोता को अत्यन्त कर्ण प्रिय लगे। दीर्घ घण्टानाद की तरह ओंकार के उच्चारण की ध्वनि नाभि से आरम्भ होकर कण्ठ की ओर चढतीअनुभव हो, ध्वनि के साथ यह भावना करनी चाहिए कि मेरे ओंकार उच्चारण से वह ध्वनि सारे विश्व में फैल रहीं

है और अणु से वह ध्वनि प्रस्फुटित हो रही है। ऐसा लग रहा है जैसे सारा विश्व ओंकार का पवित्र उच्चारण कर रहा है, उस विराट् ब्रह्म की उपासना करते-करते सारे विश्व में ओंकार ध्वनि को भरने की भावना से साधक को अपार आनन्द की अनुभूति होती है।

लम्बे गहरे श्वास के साथ तीव्र ओंकार की ध्वनि

श्वास लम्बे और गहरे हों;। उसके साथ उच्च स्वर और तीव्र गतिसे ओंकार का उच्चारण करना चाहिए। इसे कम से कम २७ बार करें। इससे साधना में आशाजनक सफलता मिलने में सहायता मिलती है।

(६) नाद ध्वनि अथवा ध्यान

नेत्र और मुख दोनों बन्द करके भीतर ही भीतर 'हुं ॐॐॐॐॐ ॐ' की नाद ध्वनि करें। धीरे-धीरे ध्वनि को तीव्र करें। नि संकोच इसे तीव्रतर करते चले जायें ताकि पूरे शरीर में कम्पन्न उत्पन्न हो सकें। सुविधानुसार ध्वनि को ऊँचा नीचा भी किया जा सकता है मन को बाह्य विषयों से हटाकर केवल ध्वनि पर ही केन्द्रित करना चाहिए। अभ्यास से मन स्थिर होने लगेगा और अपूर्व शान्ति का अनुभव होगा, उलझे और अशांत मन वाले व्यक्तियों को इससे असाधारण लाभ होगा।

जिस तरह से सर्प बीन बजाने से लहराने लगता है, उसी तरह नाद योगी का मन भी नाद ध्वनि में खो जाता है और उच्च अभ्यास होने पर मन का लय भी हो जाता है। आरम्भिक स्तर पर तो मन ध्वनि में रस लेने लगता है और आनन्द की मस्ती में झूमने लगता है। मन की मस्ती का प्रभाव शरीर पर भी पड़े बिना नहीं रहता परिणाम स्वरूप शरीर पर भी झूमने के लिए वाध्य हो जाता है साधक जब तक

नाद ध्वनि करता रहता है, तब तक यह प्रक्रिया जारी रहती है बाहरी सांसारिक सुखों को भूलकर मन अन्तर्मुख होकर इसी आनन्द के पीछे भंवरे की तरह मंडराता रहता है और अन्ततः इसे पा लेता है। यह साधना की सफलता का चिन्ह है।

नाद ध्वनि,करते समय यह भावना करनी चाहिए कि हमाराशरीर बांस की खाली पोंगरी की तरह है और केवल ध्वनि के कम्पनों सेओत-प्रोत है। साधना जब उच्च स्तर पर पहुँच जायगी तो हम केवय अपने को श्रोता ही अनुभव करें और नाद की ध्वनि अपने आप ध्वनित होती रहेगी। साक्षी भाव जाग्रत हो जायगा।

ध्वनि ३० मिनट तक की जा सकती है। कान में रुई या कोई डाट लगाना भी अच्छा रहेगा। नाद ब्रह्मध्यान का यह पहला चरण हुआ।

दूसरे चरण की सहयोगी क्रिया प्रभावशाली है। इससे हाथों में ऊर्जा उत्पन्न होती है। विधि इस प्रकार है—

हाथ की हथेलियों को ऊपर की ओर करके हाथों को सामने की ओर ले जाकर बहुत ही धीमी गति से चक्राकार घुमाएँ ताकि दाँया हाथ दाँयी ओर को और बाँया हाथ बाँयी ओर को घूमें। एक चक्रपूरा होने पर हाथ पूर्व की स्थिति में ही आ जाँय। यह क्रिया करते समय भावना करें कि शरीर से उत्पन्न ऊर्जा को आप ईश्वर को समर्पित कर रहे हैं। समर्पण भाव पूर्ण हो, इस क्रियाको बार-बार साढ़े सात मिनट तक करें। अब हथेलियों को नीचे कर दें और हाथों को दूसरी दिशामें घूमाना आरम्भ करें। पहिले की तरह हाथों को छाती के सामने रखे और अब अपनी ओर लायें। इसके बाद इन्हें चक्राकार इस प्रकार घुमायें कि दाँया हाथ दाँयी ओर को व बाँया हाथ बाँयी ओर को

बहुत धीमी गति से घूमे । एक चक्र पूरा करें । साढ़े सात मिनट तक इसी क्रिया की पुनरावृत्ति करते रहें और भावना करें कि चारों ओर फैली ऊर्जा को समेट रहे हैं ।

आप अनुभव करें कि हाथों में उत्पन्न ऊर्जा सारे शरीर में फैल रही है जो साधन के उच्च विकास में परम सहायक होती है । इस क्रिया में शरीर हिलता है तो हिलने दें, गिरता है तो गिरने दें ।

शिथिलीकरण

भस्त्रिका प्राणायाम, अनुलोम, विलोम प्राणायाम सहित कुम्भक, दीर्घ ओंकार ध्वनि और लम्बे गहरे श्वास के साथ तीव्र ओंकार ध्वनि व नाद ध्वनि के निरन्तर अभ्यास से एक समय ऐसा आता है जबशरीर के शिथिलकरण की क्रिया स्वयंमेव सम्पन्न होने लगती है । शरीर एक दम शिथिल नहीं हो पाता है । कई चरणों में यह प्रक्रिया पूर्ण होती है आरम्भ में पीठ के निचले भाग में कुछ गांठ खुलने जैसी अनुभूति होती है और शरीर थोड़ा शिथिल होकर पीछे की ओर झुकता है । यह कई बार होता है और अन्त में शरीर गिर जाता हैं । शरीर पूर्ण शिथिल होने पर ही गिरता है । यह क्रिया कितने समय में हो पायेगी, यह साधक के अभ्यास पर निर्भर करती है ।

जब यह अभ्यास परिपक्व हो जाता है तो शान्त भाव से नेत्र बन्द करने पर थोड़ी देर बैठने पर ही शिथिलीकरण हो जाता है । उच्च साधकों के नेत्र खुले रहने पर शरीर के शिथिल होने की क्रिया संचालित होने लगती है ।

शरीर का शिथिल होना ध्यान में प्रवेश के लिए परम उपयोगी रहता है । अतः यदि स्वयंसेव नहीं हो पाता है तो निम्न विधि से शिथिलकरण मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए—

शरीर को मृतक की तरह निर्जीव, निष्प्राण, मूर्छित, और अर्ध निद्रित स्थिति में मांस-पेशियों को ढीला करके प्रसुप्त दिशा में पड़े रहने की अनुभूति करना ही शिथिलीकरण मुद्रा कहलाता है। इसमें शरीर को प्राण से पृथक् मानने का अनुभव करना पड़ता है।

पद्मासन, सिद्धासन या किसी भी अन्य सुविधाजनक आसन में बैठ सकते हैं। मेरुदण्ड सीधा रहे। आराम कुर्सी पर भी लेट सकते हैं। दीवार या मसनद का सहारा भी लिया जा सकता है। श्वासन में भी यही अभ्यास किया जा सकता है।

शान्त भाव से नेत्रों को बन्द करें और कल्पना करें कि चारों ओर प्रलय की सी स्थिति दिखाई दे रही है। ऊपर नील गगन और नीचे नील जल ही देखें। इसके अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न दे क्योंकि प्रलय में सब कुछ नष्ट हो जाता है। अब अनुभव करें कि शरीर में से प्राण निकल गया हैं और मृतक जैसा हो गया है। मुर्दे के शरीर में कुछ गति नहीं होती। इसलिए उसे पूर्ण विश्रान्ति की स्थिति कहना चाहिए। समाधि में भी ऐसी स्थिति होती है। तुरीयावस्था में पहुँचने पर भी प्राण की यही स्थिति होती है। इस अभ्यास से शरीर तो पूरी तरह शिथिल हो ही जाता है। इसके साथ ही कल्पना रहित और खाली करना होता है। इस मन की स्थिति की अनुभूति के लिये ही प्रलय की कल्पना करनी पड़ती है। प्रलय में तो कोई भी भौतिक पदार्थ शेष नहीं रह जाता। इसलिए सभी भौतिक सम्बन्ध स्थगित हो जाते हैं। किसी कामना और इच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता। न ही अनुकूल और प्रतिकूस परिस्थितितों का ध्यान रहता है। मृतक शरीर में दुःख, चिन्ता और महत्वाकांक्षा का उभार कैसे हो सकता है? जब भौयिक संसार से सम्बन्ध विच्छेद हो जाते हैं तो मन में विचारों का प्रवेश भीं बन्द हो

जाता है। मृतक जैसी स्थिति की कल्पना जितनी सुदृढ़ होगी, उतनी ही जल्दी शरीर शिथिल हो जायगा और मन में विचारो का अभाव हो जायगा। शरीर का पूरी तरह ढीला और मन को पूरी तरह खाली करना ही शिलिलीकरण मुद्रा का विशिष्ट उद्देश्य है। यह उच्चस्तरीय ध्यान के लिए अत्यन्त आवश्क है। इसे मनोविग्रह की प्रथम भूमिका माना जाता है।

आरम्भ में इसका १५ मिनट तक अभ्यास करना चाहिए। धीरे-धीरे इसे आधे घण्टे तक बढ़ाया जा सकता है।

सुझाव औरसंकेत से भी यह स्थिति लाई जा सकती है। यदि कोई व्यक्ति सुझाव देनेवाला न हो तो स्वयं ही मन को सुझाव दें। अनुभव करे कि शरीर ढीला हो रहा है, ढीला हो रहा है, ढीला हो रहा है। इन शब्दों को मन्त्र मानकर बार-बार इसको दोहरायें और अनुभव करें कि वास्तव में शरीर ढींला होने लगा है। शरीर से, सभी अंगों से सम्बन्ध तोड़ दें, उनकी पकड़ को शिथिल करें तभी शक्ति भीतर लौट पायगी, सरक पायगी और शरीर प्राणहीन की स्थिति में आ पायगा। अतः बार-बार सुझाब दें कि शरीर की सारी पकड़ शिथिल हो गई है। सम्पूर्ण प्राणशक्ति बाहर से अन्दर को चली गई हैं, शरीर निचेष्ट, निर्जीव जैसा प्राणहीन हो गया है, ढीला हो गया है, शिथिल हो गया है।

अब सुझाव दें कि श्वास भी शिथिल हो रही है, शान्त हो रही है। श्वास की गति में कुछ बधा न डालें। न उसे रोकना हैं, न धीमा करना है। उसे केवल ढीला छोड़ना है। अतः बार-बार भावना करें कि श्वास शिथिल हो रही है। श्वास शान्त हो रही है, फिर श्वास शान्त हो चुकीं है।

फिर मन की शिथिलता का अनुभव करें कि मन विचार शून्य हो गया है, खाली हो गया है, विचारों के आने के सभी मार्ग बन्द हो गये हैं, उनका आना बन्द हो गया है, मन विचारों से रिक्त हो गया है। अब किसी प्रकार का कोई विचार मन में नहीं हैं। जैसे विचारों सेनाता टूट गया है अथवा विचारों ने अपना मार्ग बदल लिया है या वह कहीं समा गये हों। विचार नहीं हैं तो मन शान्त हो गया है। मन शान्त और शून्य हो गया है, मन शान्त और शून्य हो गया है, सब बिल्कुल शून्य हो गया है, मन बिल्कुल शून्य हो गया।

इस तरह से शरीर, श्वास और विचारों की शिथिलता का अनुभव करना है। शरीर जिधर भी झुकता है, झुकने दें, उसे रोकें नहीं भीतर की पकड़ को बिल्कुल शिथिल कप दें। जिधर गिरता हो गिरने दें। यह प्रगति के लक्षण हैं। इसमें विघ्न न डालें।

यदि शिथिलता का अभ्यास सफल होता है तो समझ लें कि ध्यान का अभ्यास भी निश्चित रूप से सफल हो जायगा। शरीर का शिथिल होना अभ्यास योग की ओर विकसित होने का प्रथम चिन्ह है।

ध्यान की साधना विधि

प्राण विज्ञान का पहले विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। प्राण तत्व के विषय में जो खोजें हुई हैं उसे ही प्राण विद्या अथवा प्राण विज्ञान कहा जाता है उसमें जिन विधियों का प्रयोग किया गया इनकी मुख्य क्रिया का नाम प्राणायाम हुआ। प्राणायाम कहते हैं—प्राणों के व्यायाम को। प्राणायाम का उद्देश्य श्वास के द्वारा प्राण तत्व का अधिक अंग में आकर्षित करना और उसे प्राण सत्ता में धारण करना है। प्राण और श्वास में अन्तर है। फिर भी श्वास की क्रिया को प्राणायाम कहा जाता है। श्वास शरीर और आत्मा के बीच एक सेतु का काम करता है क्योंकि शरीर श्वास से ही बँधा रहता है। यही कारण है कि श्वास को ही प्राण कहा जाता है और प्राण ध्यान की श्वासद्वारा ही संचालित किया जाता है। श्वास प्रश्वास ध्यान को प्राण ध्यान की ही संज्ञा दी गई हैं। अतः हम यहाँ श्वास-प्रश्वास ध्यान की विधि का वर्णन करेंगे।

इस प्रक्रिया में श्वास-प्रश्वास की गति पर मन को स्थिर करना होता है। साधक शौचादि से निवृत्त तथा सब प्रकार से शुद्ध होकर शरीर में कम से कम तथा ढीले वस्त्र धारण करता और किसी भीसुखद स्थिति में आसन पर बैठ जाता है। कुछ लोग पद्मासन लगाकर अभ्यास करना उपयुक्त मानते हैं—

मेरुदण्ड को सीधा रखे हुए बैठेंऔर फिर अभ्यास को आरम्भ करें उसे श्वास और निश्वास दोनोंकी ही गति पर यह ध्यान रखना चाहिए

कि श्वास शरीर के भीतरी भाग से, कहाँ से उठा, किस प्रकार उठा और किस प्रकार शरीर से बाहर निकला ? श्वास लेते समय भी इसका सूक्ष्म निरीक्षण करें कि श्वास किस प्रकार बाहर से भीतर घुसा और फिर किस भाग तक पहुँचा ? इस समस्त प्रक्रिया का सूक्ष्म अन्वेषण इस साधना का प्रमुख अङ्ग है । इसके निरीक्षण-परीक्षण में जो अनुभव लिया जाये, वह निम्न प्रकार है—

जब साधक गहरे श्वास छोड़े और ग्रहण करे तो उसे इस बात का स्पष्ट अनुभव होता है कि मैं दीर्घ रूप से श्वास छोड़ रहा या ले रहा हूँ। बस ह्रस्व श्वास छोड़े याले तो अनुभव होता है कि मैं ह्रस्व श्वास छोड़ रहा या ले रहा हुँ । उसकी दीर्घता ह्रस्वता में लगने वाले समय का ध्यान रखने से इसका निर्णय हो सकता है।

ध्यान रहे कि जो लोग जल्दी-जल्दी श्वास लेते छोड़ते हैं, उनके श्वास-नि:श्वास के और जो धीरे.धीरे श्वास लेते छोड़ते हैं, उनके दीर्घ समय के होते हैं। इस प्रकार सनझकर सामधिक समस्या का ज्ञान हो जाता है ।

श्वास-नि:श्वास में मन को योजित कर अभ्यास करें तो उनमें सूक्ष्मता आने लगती है। जितना ही अधिक अभ्यास किया जायेगा, उतनी ही अधिक सूक्ष्मता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है ।

उस समय यह अन्वेषण करना अपेक्षित हैं कि श्वास का आरम्भ कहाँ से हुआ ? मध्य कहाँ पर है और अन्त कहाँ हुआ ? श्वास लेने-छोड़ने, दोनों ही में इसका अनुसन्धान अपेक्षितहोता है । इस अनुसन्धान के फलस्वरूप ही अनुभूतियों और उनकी अभिव्यक्तियों में वृद्धि होने लगती है ।

इस अभ्यास में जितना अधिक मन लगेगा, अनुभूति भी उतनी ही गहरी होगी। उसके साथ यह भावना भी की जानी चाहिए कि मेरे

शरीर में शक्ति भर रही है तथा स्मृति भी दृढ़ होती जा रही है। इस प्रकार की भावना तन और मन दोनों के ही स्वस्थ तथा प्रफुल्लित बनाने में सहायक होती है।

यदि अभ्यास की दृढ़ता रहे तो श्वास-नि:श्वास सूक्ष्मतर हो जाता है। उस स्थिति में ध्यान की स्थिति सुदृढ़ हो जाती है तो एक विचित्र घटना घटतीं है। अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गति रुककर स्थिर हो जाती है। इस प्रकार श्वास व्यापार के अवरोध को कुम्भक कहते है। श्वास-प्रश्वास के ध्यान में इस स्थिति का मुख्य महत्व है।

इस अभ्यास की मुख्य क्रिया श्वास के आदि, मध्य और अन्त की अनुभूति ही हैं। अभ्यास के द्वारा ऐसी अनुभूति हो सकती है। किसी को आदि की, किसी को मध्य की और किसी को अन्त की अनुभूति होती हैं। जो लोग अभ्यास में लगे रहते हैं, उन्हें तीनों स्थितियों की अनुभूति रहती है, जिसके लिए चितवृत्ति, स्मृति और प्रज्ञा की सहायता अपेक्षित हैं।

इस अभ्यास के द्वारा कार्य संस्कारों में उत्तरोत्तर सूक्ष्मता बढ़ती जाती है ओर पूर्व संस्कारों का शमन होता जाता है। यह अभ्यास एक घन्टे तक किया जाकता है और तीन घन्टे तक बढ़ाया जा सकता है। उसके वाद अभ्यासोत्तर या अन्तिम क्रम के रूप में १५-२० मिनट तक शान्त भाव से विश्राम करना चाहिए। इसमें सफलता मिलने पर समस्त विकार तथा कम्पन, हलचल आदि की भी शान्ति हो जाती है।

साधना की अनुभूतियाँ

श्वास-प्रश्वास ध्यान में सरला, स्वाभाविकता और सरसता है। इस विधि के द्वारा शीघ्र ही ध्यान में प्रवेश किया जा सकता है। इसमें उच्च आध्यात्मिक स्थिति तक पहुँचने की क्षमता है अन्य विधियों की अपेक्षा इससे कम समय में अन्तर्यात्रा को पूर्ण किया जा सकता है। सरलता के कारण अधिकांश साधक इसके द्वारा सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

साधना विधि की प्रारम्भिक क्रियाओं का अभ्यास करने पर शरीर शिथिल होने लगता है और गहरे ध्यान में प्रवेश किया जा सकता है। यदि प्रारम्भिक क्रियाओं से शिथिलीकरण नहीं हो पाता है तो ऊर्जा ध्यान के अभ्यास से इसे सम्पन्न किया जा सकता है।

नेत्र बन्द करके यह भावना करे कि शरीर में ऊर्जा का आगमन हो रहा है। शरीर के सभी क्षेत्रों में यह ओत-प्रोत हो रही है इस क्रिया से धीरे-धीरे ऊर्जा बढ़ती चली जायेगी। श्वास में गति आयेगी। ऊर्जा के विकास से शरीर में धीरे-धीरे शिथलता आती जायेगी और यह धीमी गति से गिरता जायेगा।

आत्म भावना अथवा 'मैं नहीं हूँ, की भावना करने पर शिथिलीकरण शीघ्र होने लगता हैं। 'मैं नहीं हूँ', का धीरे-धीरे मानसिक उच्चरण करते हुए साधक के मन में यह भाव उत्पन्न होता है कि वह शरीर नही है, आत्मा है, जब यह भावना दृढ़ होने लगती है और शरीर की बजाय क आत्म-ज्योति -सी प्रतीत होने लगती है तो शिथिलीकरण क्रिया कुछ ही क्षणों में क्रियाशील होने लगती हैं।

जब यह अभ्यास बढ़ता है तो नेत्र बन्द करने पर 'मैं नहीं हूँ' की भावना करते ही शरीर शिथिल होना आरम्भ हो जाता है। उच्च साधकों को नेत्र बन्द करने की भी अपेक्षा नहीं रहती। साधना पर बैठते ही खुले नेत्रों से शरीर गिरने की क्रिया स्वयंमेव संचालित होना आरम्भ हो जाती है। ऐसे साधक आसन पर एकांत में ही नहीं, कुर्सी पर कहीं भी भीड़-भाड़ वाले संस्थान में भी शिथिल हो जाते हैं। कुर्सी पर बैठने पर हाथ पैर अलग-अलग हों और किसी को स्पर्श न कर रहे हों। यदि आसन पर बैठने पर शीघ्र ही शिथलीकरण नहीं हो पाता तो पद्मासन, सुखासन आदि किसी भी परम्परागत आसन पर बैठने की अपेक्षा टांगों को आगे की ओर इस प्रकार मोड़कर रखें कि दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रहें। फिर 'मैं नहीं हूँ' की भावना करें। इस क्रिया से शरीर शिथिल होंने में अपेक्षाकृत सरलता प्रतीत होगी।

जब साधक ध्यान में एकाग्रता प्राप्त करने लगता है तो उसे उज्ज-वल प्रकाश दिखाई देता है। विभिन्न प्रकार की ज्योतियाँ, भिन्न-भिन्न रंगों और आकार में दृष्टिगोचर होती हैं। भीतर उनकी गति भी होती रहती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सूर्य की तरह आकार वाले प्रकाश की चमक दिखाई देती है। कभी चन्द्रमा के प्रकाश की ज्योति, तो कभी हीरे की तरह चमकती हुई ज्योति प्रतीत होती है। कभी धुंधला सा प्रकाश और कभी अन्धकार का आभास होता है। नीलवर्ण आकाश भी कभी प्रतीत होता हैं।

उज्जवल प्रकाश में विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ, विभिन्न आकार और रंगों के फूल दिखाई देते हैं। भूमि से निकलती हुई पीले रंग की कलियां और फूल प्रस्फुटित होते हैं जिन्हें प्रेम, परमार्थ और निःस्वार्थता का प्रतीक माना जाता है। सोने जैसे पीले सिक्के लाखों की संख्या में गिरते हैं जो लक्ष्मी तत्व के विकास के सूचक हैं। यज्ञ में भी अग्नि

उठती हुई लपटें कभी-कभी ध्यान में आती है जो शक्ति, सिद्धि, उन्नति, गति, प्रकाश, गर्मी, भविष्य की ओर सजगता, त्याग बलिदान और परमार्थ वृत्ति की ओर इगित करती हैं यह सभी शुभ लक्षण है।

साधक अध्यात्म क्षेत्र का अधिकारी है और वह निश्चित रूप से उच्च स्थिति तक पहुँच सकता है, इस आश्वासन के साथ उसे अक्षर ब्रह्म ओंकार के दर्शन होते हैं। कभी तो चल चित्र की तरह ओंकार का न समाप्त होने वाला चक्र घूमता हुआ सा प्रतीत होता है। ऊपर से नीचे की ओर ओंकार ही ओंकार आते दिखाई देते हैं। वह एक स्थान पर स्थित नहीं रहते वरन् गतिवान रहते है। आध्यात्मिक विकास की ओर यह बढ़ने की तैयारी के लक्षण हैं।

स्वास पर दृष्टि रखने से ऊर्जा का विकास होता है। इसका आरम्भ पहले हाथों और पैरों से होता है और यह फिर ऊपर की ओर बढ़ना आॅत्मिक प्रगति का सूचक है। साधक के लिए वह सौभाग्य का क्षण होगा जब ऊर्जा सारे शरींर में व्याप्त हो जाएगी और हाथ पैरों से आरम्भ होकर मस्तिष्क तक पहुँच जाएगी। साधक को ऐसा प्रतीत होता हैं जैसे विद्युत् ऊर्जा के तूफान से उठ रहे हैं और इधर से उधर आ जा रहे हैं तूफान आते हैं और फिर शाँत हो जाते हैं। इन तूफानों से भयभीत न हों। न ही उनकी गति को रोकना चाहिए। उनकी स्वाभविक गति को प्रवाहित होने दे, उसमें सहायक हों। अच्छा तो यही है कि उसके साथ गतिवान हो जाएँ, मिल जाएँ। ऊर्जा ऊपर की ओर उठती है, गति तूफान की तरह तीव्र होती है। ऐसा प्रतीत होता कि आघात लग रहे हैं। शरीर का रोआँ रोआँ काँपने लगता है, तन तन्तु झञ्झनाते हैं। तूफान में सूखे पत्ते विभिन्न दिशाओं में जैसे नए-नए मार्ग बनाते चलते हैं, वैसे ही ऊर्जा भी अपने नए मार्ग प्रशस्त करती चलती है अपना फैलाव क्षेत्र विस्तृत करती चलती है। ऐसा भी समय

आता है जब शरीर का प्रत्येक तन तन्तु आंदोलित होने लगता है और ऊर्जा पूर्णतः फैल जाती है । यह ऊर्जा का आन्दोलन शरीर को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता वरन् जो क्षणिक भय की प्रतीति होती है, उनके स्थान पर आनन्द और शान्ति का प्रवाह चलता सा प्रतीत होता है।

ऊर्जा के व्यापक प्रवाह से मन में एक अद्भुत मस्ती का जन्म होता है जो इन्द्रियों से कभी अनुभव नही हुई। इस दिव्य मस्तीमें मन झूमता है। इस सोमरस के पान से जैसे व्यक्ति अपने होश-हवास खो बैठता है, वैसे ही इस मस्ती में मन का आपा भी लुप्त हो जाता है और शरीर को इसके लिए बाध्य करता है। शरीर भी एक ऐसे क्रम में सक्रिय रहने लगता है जिससे यह अनुभव होता है कि यह किसी अज्ञात शक्ति के अधिकार में है और उसी के निर्देशों पर चलकर ताण्डव नृत्य कर रहा है। यह आनन्द की पुलक शरीर में घटित होती हैं परन्तु शरीर की नहीं होती। इस दशा में उच्च सत्ता के साथ एक्य की निकट सम्भावनाओं का आभास होता है।

शरीर में विद्युत ऊर्जा के संचार से धीरे-धीरे शरीर भाव का विनाश होने लगता है। जितना-जितना शरीर भाव गिरता है. उतना उतना आत्मभाव जाग्रत होने लगता है और ऊर्जा का बोध विकसित होता रहता है। यह जीवन ऊर्जा कहलाती हैं। अपने को उसके चरणो में समर्पित कर दें तो प्रभु का अनुग्रह प्राप्त करनेमें देर न लगेगी,शांति और आनन्द का अपूर्व आनन्द होगा।

यह शांति और आनन्द की अनुभूति तभी होती हैं जब ऊर्जा शरीर में पूर्ण रूप से फैल जाती है यदि पूरी तरह नहीं फैल पाती तो ध्यानके बीच में ही यह भावना करनी चाहिए कि ऊर्जा बढ़ रही है। बढ़ रही है

बढ़ रही है..................। ऐसे सुझाव बार बार देते रहें। इससे श्वास में एक आन्दोलन सा आ जाता है। श्वास की गति बढ़ने पर ऊर्जा का विकार होने लगता है।

जब ऊर्जा का फैलाव सारे शरीर में विस्तृत हो जाता है तो ध्यान के बाद भी शरीर ऊर्जासे प्रभावित रहता है। ध्यान के बाद कुछ समय तक विश्राम करना आवश्यक है ताकि ऊर्जा शांत हो जाए।

सौभाग्यवान है वह साधक जिसके शरीरमें विद्युत का प्रवाहध्यान के बाद भी बना रहता है और उसकी प्रतीति हर समय होती रहती हैं उसका नामकरण कुछ भी हो सकता है। अजपा-जप अथवा स्वसंचालित ओंकार ध्वनि की संज्ञा भी इसे दी जा सकती हैं। अर्जुन के शरीर में रोम-रोम से कृष्ण नाम के कीर्तन की ध्वनि होते रहना इसी तरह के विद्युत प्रवाह का सूचक है। स्वामी रामतीर्थ के शरीर से सुप्तावस्था में भी ओंकार ध्वनि सुनाई देती थी। वहभी विकसित विद्युत प्रवाहका ही परिणाम प्रतीत होता है। इस विद्युत प्रवाह के बने रहने पर कहीं भी किसी समय शरीर शिथिल होने पर साधक ध्यान में प्रविष्ट हो सकता है। साधना में बैठने पर भी कुछ ही क्षण लगते हैं ध्यानस्थ होने में।

इस स्थाई विद्युत प्रबाह की जिस साधक को प्रतीति होती रहती है, उसे ऐसा लगता है कि निरन्तर उसके शरीर में ईश्वर केनाम की ध्वनि हो रही है, कीर्तन हो रहा है, जिसे जब भी चाहे सुन सकता है। सन्तों की भाषा में कह सकते हैं कि वह आठों प्रहर मस्ती मेंझूमता रहता है।

ध्यान में श्वास की गति धीरे-धीरे धीमी हो जाती है। कभी-कभी ऐसा अनुभव होता है जैसे श्वास बन्द होने जा रही है अथवा हो रही

है। कुम्भक जैसी स्थिति भी हो सकती है। ध्यान रहे कि इसमें श्वास को न बन्द करना है और न ठहराना है, केवल शिथिल व शान्त छोड़ देना है। धीरे-धीरे वह स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि श्वास की गति का आभास ही नहीं होता। कई बार ऐसा सन्देह भी हो जाता है कि कहीं मृत्यु तो नहीं हो गई है। श्वास इतनी शिथिल और शांत हो जाती है कि यह अनुभव ही नहीं होता कि वह चल रही है या नहीं। यह स्थिति आने पर यह समझना चाहिए कि साधक शांति और आनन्द सम्भावनाओं के निकट है।

श्वास को शिथिल और शांत छोड़ने का अभ्यास जब आगे बढ़ता है तो ऐसा समय भी आता है जब श्वास एक बिन्दु पर रुक जाता है। यदि यह ठहराव एक क्षण के लिए भी हो जाए तो उसी समय शरीर और आत्मा अलग अलग दिखाई देने लगते हैं। सारे व्यक्तित्व में ऐसा प्रकाश फैल जाता है कि अज्ञान का पर्दा गिर जाता है और ज्ञान व विवेक का विकास होकर शरीर और आत्मा के पृथक पृथक अस्तित्व का अनुभव होता है।

श्वास शिथिल और शांत होने पर मृत्यु जैसी स्थिति का आभास होता है। ऐसा लगता है कि साधक के प्राण किसी गहन अन्तयात्रा के लिए भीतर सिकुड़ गए हैं परन्तु आकृति से मृत्यु के कोई लक्षण दिखाई नही देते वरन् शांति के गहन भाव प्रतीत होते हैं।

श्वास के शान्त, शिथिल और शून्य होने के बाद विचार को भी शिथिल और शून्य करना है। मन को निर्विचार स्थिति में लाना होगा तभी दर्शन की उपलब्धि हो सकेगी। तभी परमात्मा की छवि दिखाई देगी। कण-कण में भगवान का स्थित होना सभी कहते हैं परन्तु इसे अनुभव वही कर सकता है जो निर्विचार होगा। जिस सौभाग्यशाली साधक का तीसरा नेत्र खुल गया है अथवा उसकी भीतर देखने की

दृष्टि बढ़ गई है। वह जब पेड़ों को देखता है तो पेड़ की स्थूल आकृति के साथ उसे पेड़ के भीतर की प्राण सत्ता भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। ऐसा साधक जब किसी भी प्राणी को देखता है तो उसे उसके शरीर में निहित आत्मा के दर्शन हो जाते हैं। हर व्यक्ति को ऐसा ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्त नहीं होता। जिस साधक का चित्त निर्विचार और शांत स्थिति में आ जाता है और नेत्र स्वच्छ और निर्मल हो जाते हैं, वही संसार के कण-कण में ईश्वरीय अनुभूतियों के दर्शन कर पाता हैं।

निर्विचार स्थिति सहज में नहीं आती। ध्यान के समय साक्षी भाव रखने से विचारों की शृङ्खला टूटने लगती है, अबधि गति से उनका आगमन रुकने लगता है। बीच में एक सुदृढ़ दींवार खड़ी हो जाती है जो उन्हें आने से रोकती है।

साक्षी भाव का अभिप्राय है—देखते रहना। देखते रहने से विचार कम होने लगते हैं। यह दृष्टि जितनी गहन होती जाएगी, पूर्ण होती जायेगी, उतना ही विचारों का तांता शून्य की ओर अग्रसर होता जाएगा। तब एक अद्भुत दृष्टि और दर्शन का [अनुभव होगा। इसी अनुभव को सत्य के दर्शन की संज्ञा दी गई है।

ध्यान में साक्षी भाव बना रहे। देखें कि आप ध्यान कर रहे हैं, देखें कि आपकी दृष्टि श्वास पर टिकी हुई है। बस देखते ही रहें। यह देखना जब गहन होता जायगा तो मन में विचारों की भीड़ नहीं रहेगी वह विचार शून्य हो जायगा, निर्विचार हो जाएगा। साक्षी भाव से देखने पर भीतर जागरण होता है। इस जागरण से विचार शून्य होते हैं। विचार शून्यता का उपाय है—विचारों के प्रति सजग रहना। यह

सजगता ही विचार शून्यता लाती है और विचार शून्यता से ही समाधि अवस्था आ जाती है। जब विचार जाते हैं तो समय शून्यता का आभास भी तभी होता है।

निर्विचार अवस्था आने पर ईश्वर साक्षात्कार होता है। इस भौतिक जगत में पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं होता, चारों ओर प्रभु के ही दर्शन होते हैं। जब सभी प्राणियों में ईश्वर की अनुभूति होने लगती है तो आनन्द प्रस्फुटित होता है। यह निश्चित है कि जब किसी साधक को अन्य प्राणियों में अथवा स्वयं में ईश्वर की अनुभूति होने लगती है तो सारी भिन्नता समाप्त हो जाती है। द्वैत नहीं रह जाता, अद्वैत के दर्शन होते हैं, सारी जगत सत्ता से 'एक्य हो जाता है। यही समझना चाहिए कि उसके प्राणों का ही सारी जगत सत्ता से एकीकरण हो गया है। इस स्थिति में साधक की समस्त गतिविधियाँ आनन्द से ओत-प्रोत हो जाती हैं। किसी देवी देवता के दर्शन को ईश्वरीय दर्शन नहीं कहते आनन्द की चरम अनुभूति को ही परमात्मा दर्शन की संज्ञा दी गई है। गहन, स्वच्छ और निर्मल दृष्टि से जब जगत 'का लोप होता है तो परमात्मा के दर्शन होने आरम्भ होते हैं और अन्त: क्षेत्र के रोम-रोम में ऐसे सङ्गीत की धुन आरम्भ होती है, जिसकी हर स्वर लहरी मेंआनन्द की अनुभूति होती है। इस परम आनन्द की स्थिति में साधक कीस्थिति में साधक की सारी क्षुद्रताएँ, दुःख दरिद्रताएँ, चिन्ताएँ, कठिनाइयाँ, परेशानियाँ और भौतिक समस्याएँ नष्ट हो जाती हैं। हर स्थिति में वह एक रस रहता है, आनन्दित रहता है। अब वह धन वैभव व प्रतिष्ठा की खोज नहीं करता। वह अब भिखमंगा नहीं, सम्राट हो जाता है। स्वामी रामतीर्थ इस स्थिति में पहुँच चुके थे, तभी अपने को राम बादशाह कहते थे। इसे आप स्वर्ग, मोक्ष, निर्वाण, कुछ भी नाम दे सकते हैं।

श्वास प्रश्वास ध्यान से ऐसी ही आनन्द की घड़ी आती है कि जगत सत्ता का लोप होने पर सभी प्राणियों में पेड़ पौधों में पशु पक्षियों में उस एक ही प्राण सत्ता के दर्शन होने लगते हैं, परमात्म दर्शन होते हैं। जब व्यक्ति अपने को खोता है तो वह विराट में मिल जाता है, विराट का ही रूप धारण कर लेता है। बूँद जब अपना अस्तित्व खो देती है तो बूँद नहीं रहती, वह सागर का ही रूप धारण कर लेती है, वह सागर ही बन जाती है। व्यक्ति जब व्यक्ति की तरह अपना अस्तित्व मिटा देता है तो वह व्यक्ति नहीं रह जाता, परमात्मा का रूप धारण कर लेता है, वह परमात्मा हीं बन जाता है। यह परम आनन्द की स्थिति है, जो श्वास प्रश्वास ध्यान से प्राप्त होती है।

—卐—

॥ समाप्त ॥

विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

—×—

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम है। इसे मन्त्र शिरोमणि मन्त्र सम्राट, मन्त्र राज, बीजमन्त्र और मन्त्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता है। इसे श्रेष्ठतम् महानतम और पवित्रतम् मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं है। ॐ सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से प्रभावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता हैं। भौतिक व आत्मिक उत्थान के लिए कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषिमुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते रहे हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इस कमी का अनुभव करते हुए विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना का सारा साहित्य निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय, बरेली से मँगवा लें, आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके ४ अन्य मित्रों व सम्बधिन्यों को प्रेरित करें और सभी संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष २७००० साधकों द्वारा ६०० करोड़ मन्त्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के इस श्रेष्ठतम् आध्यात्मिक महायज्ञ में सम्मिलित होकर महान् पुण्य के भागी बनेंगे।

विनीत :

संस्कृति संस्थान — **चमनलाल गौतम**

ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००३ (उ. प्र.)

एक मौन व्यक्तित्व का मौन समर्पण

डा० चमनलाल गौतम-एक व्यक्ति का नहीं वरन् ऐसे विशाल धार्मिक संस्थान का नाम है जो सतत् २४ वर्षों से ऋषि प्रणीत आर्ष साहित्य के शोध, प्रकाशन और व्यापक साहित्य प्रचार का कार्य देश विदेश में करता रहा है। यह उनकी तप साधना का ही परिणाम है कि किसी भी आर्थिक सहयोग के विना वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, पुराण व मन्त्र-तन्त्र आदि साधनात्मक साहित्य की ३०० से अधिक पुस्तकों को प्रकाशित करके घर-घर में पहुँचाने की पवित्रतम साधना कर रहे हैं। मन्त्र-तन्त्र, योग, वेदान्त व अन्य धार्मिक विषयों पर १५० खोज पूर्ण ग्रन्थों का लेखन, सम्पादन एक ऐसा अविस्मरणीय व असाधारण कार्य है जिस पर उनके अथक श्रम, गम्भीर अध्ययन, तप, प्रतिभा और मौलिक सूझ-बूझ की स्पष्ट छाप दिखाई देती हैं। स्वस्थ साहित्य की रचना और प्रचार का उनकी जीवन योजना का यह पहला चरण पूरा हुआ।

पिछले २४ वर्षों से लगातार चल रही आध्यात्मिक साधना के महा-पुश्चरण का दूसरा चरण भी समाप्त हो रहा है। तीसरे चरण आध्यात्मिक साधनाओं और अनुभूतियों के विश्वव्यापी विस्तार का शुभारम्भ विश्व ओंकार परिवार की स्थापना के साथ बसन्तपञ्चमी की परम पवित्र बेला के साथ हो गया है। अतः उनका शेष जीवन तीसरे चरण की सफलता, ओंकार परिवार की शाखाओं के व्यापक विस्तार के माध्यम से करोड़ों व्यक्तियों को ओंकार साधना में प्रविष्ट करके उच्च आध्यात्मिक भूमिका में प्रशस्त करना, ओंकार अथवा उच्च आध्यात्मिक साहित्य की रचना व प्रचार-प्रसार को समर्पित है।

—स्वामी सत्य भक्त

योग साहित्य

पुस्तक			मूल्य
१—योग और यौवन		....	७)५०
२—योग और पुरुषत्व		....	६)५०
३—योग और महिलायें		....	७)
४—योग के चमत्कार		....	६)
५—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग		....	१०)
६—योगासन से रोग निवारण		....	७)५०
७—सूर्य नमस्कार से रोगनिवारण		....	४)५०
८—अष्टांग योग सिद्धि		....	८)
९—अष्टांग योग रहस्य		....	८)
१०—हठयोग प्रदीपिका	(भा० टी०)	....	६)५०
११—घेरण्ड संहिता	(भा० टी०)	....	६)
१२—शिव संहिता	(भा० टी०)	....	६)
१३—गोरक्ष सहिता	(भा० टी०)	....	५)५०
१४—बृहत् शिव स्वरोदय	(भा० टी०)	....	६)
१५—हिप्नोटिज्म (सम्मोहन विज्ञान)		....	७)
१६—भारत के योगी		....	४)५०
१७—योग महाविज्ञान		....	१२)
१८—कुण्डलिनी जागरण		....	७)
१९—ध्यान की सरल साधनायें		....	६)५०
२०—ध्यान के गहरे प्रयोग		....	७)
२१—नाद योग		....	६)
२२—त्राटक से मानसिक शान्ति		....	५)५०
२३—त्राटक से समाधि		....	६)
२४—त्राटक से रोग निवारण		....	४)
२५—त्राटक द्वारा मृत्यु पर विजय		....	५)२५

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)